हमारी उपासना

(पूज्य स्वामी रामानन्द जी महाराज के साधना सिद्धान्तों पर आधारित)

श्री पुरुषोत्तम भटनागर
एम.एस.सी.

साधना परिवार
स्वामी रामानन्द साधना धाम
संन्यास रोड, कनखल, हरिद्वार, उत्तराखण्ड

प्रथम संस्करण – झाँसी, अप्रैल, 1951
द्वितीय संस्करण – .....
विस्तृत तृतीय संस्करण – लखनऊ, सितम्बर 1970
संशोधित चतुर्थ संस्करण – हरिद्वार, गुरु पूर्णिमा – 9 जुलाई, 2017

2000 प्रतियाँ

मूल्यः .....

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशक
साधना परिवार
स्वामी रामानन्द साधना धाम
संन्यास रोड, कनखल, हरिद्वार, उत्तराखण्ड

कम्पोजिंगः
ग्रेटो इंटरप्राइजेज
जी–30, सरिता विहार, नई दिल्ली–110076, दूरभाषः 9910794578

मुद्रक
रैक्मो प्रैस प्राईवेट लिमिटेड
सी–59, ओखला इण्डस्ट्रियल एरिया फेज़–1, नई दिल्ली–110020

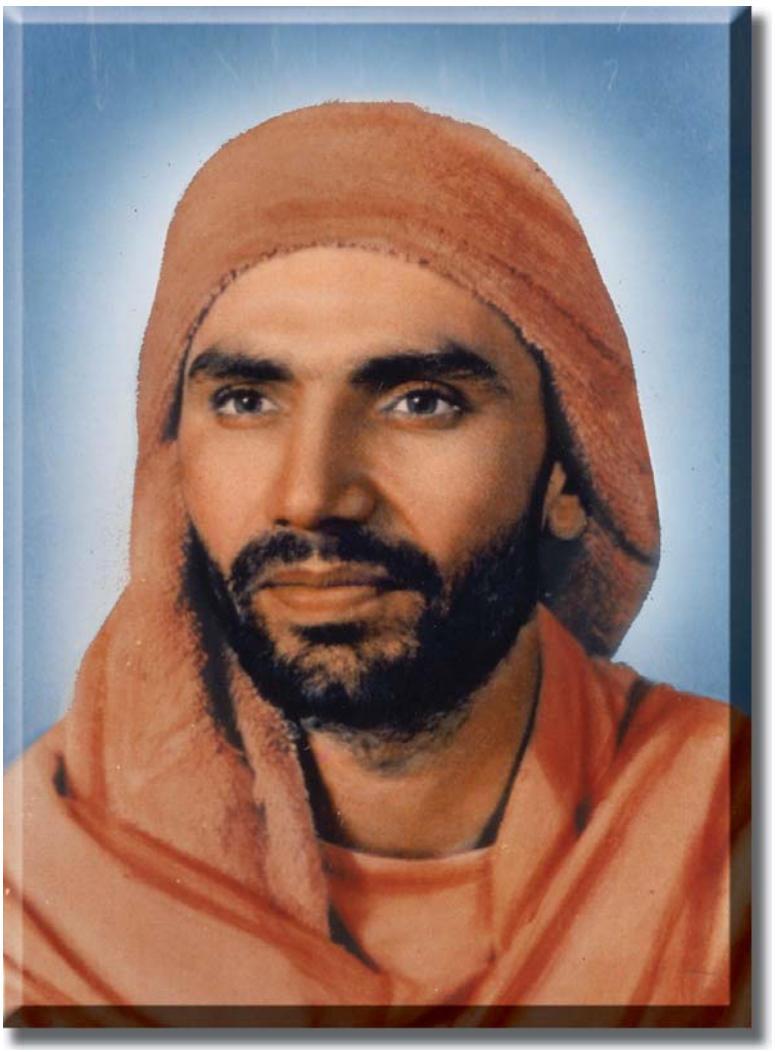

स्वामी रामानन्द जी महाराज

दो शब्द

'हमारी उपासना' यह एक साधक का प्रशस्य प्रयास है। इससे उपासना के क्रियात्मक रूप का थोड़े से शब्दों में, आरम्भ करने वाले साधकों को परिचय मिल सकेगा।

इसका प्रयोजन उपासना के क्रम को अनिवार्य रूप से बाँधना नहीं है। व्यक्तिगत रूप में स्वतन्त्रता तो है ही। सामूहिक रूप में भी परिवर्तन और संशोधन के लिए द्वार सदैव खुला है। ऐसा क्रम धीरे-धीरे स्थिर हो गया है और उपयोगी सिद्ध हो रहा है। उस क्रम का यहाँ परिचय मिल जाएगा।

यह अवरोह पथ के साधकों के लिए है – उनके लिए है जिनका मार्ग निरवशेष समर्पण का है। आरोह पथ वालों के लिए नहीं है। मैं यह नहीं चाहता कि आरोह पथ वालों की निष्ठा इसे पढ़कर डगमगाए अथवा यह गोल माल करने लगें। उनका रास्ता उनके लिए श्रेयस्कर हो।

इसमें उपासना के विषय में और भी बातों का संकलन किया गया है।

मैं आशा करता हूँ कि यह प्रयास साधकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

नीलोखेरी — **रामानन्द**

15.4.1951

प्रकाशक की ओर से

हमारी उपासना का प्रथम संस्करण सन् 1951 में पूज्य स्वामी जी के सामने ही छपा था। श्री पुरुषोत्तम भटनागर जी द्वारा संकलित 'झाँसी सैट' की चार पुस्तकों में से यह एक थी। बाद में इसका एक संस्करण और निकाला गया जो पहले संस्करण की प्रतिलिपि मात्र था। तीसरा संस्करण जो पहले वालों से एकदम भिन्न है, सन् 1970 में छपा था। अब यह एक संकलन न होकर पूज्य स्वामी जी की उपासना पद्धति पर विस्तार से लिखी एक सम्पूर्ण पुस्तक है, जो संक्षेप में उनके साधना सिद्धान्तों पर भी प्रकाश डालती है। यह पुस्तक हमारे साधना साहित्य की एक बड़ी कमी को पूरा करती है।

साधना परिवार श्री पुरुषोत्तम भटनागर जी के इस प्रयास के लिए आभार प्रदर्शित करता है।

जैसे कि तीसरे संस्करण को छपे 47 वर्ष हो चुके हैं और उसकी प्रतियाँ साधना धाम कार्यालय में उपलब्ध नहीं हैं और नए साधक साधना धाम से दिन-प्रतिदिन जुड़ते जा रहे हैं इसलिए तीसरे संस्करण का संशोधित चतुर्थ संस्करण आपके सम्मुख पूज्य स्वामी जी के 101वें जन्म वर्ष 2017 में प्रस्तुत किया जा रहा है।

हरिद्वार
15.4.2017

ओम प्रकाश सेखड़ी
अध्यक्ष, साधना धाम

चतुर्थ संस्करण की भूमिका

तृतीय संस्करण की भूमिका

पूज्य स्वामी जी ने हमारे साधन-पथ को तीन भागों में बाँटा है - आभ्यान्तरिक साधन (आत्मा से सम्बन्धित), आन्तरिक साधन (मन-बुद्धि-हृदय से सम्बन्धित) तथा बाह्य साधन (व्यवहार से सम्बन्धित) - इन तीनों साधनों की विस्तृत चर्चा उन्होंने अपनी स्वयं लिखी पुस्तकों - **आध्यात्मिक साधन मार्ग-1 व 2** में की है। साधना के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आँख मींच कर जो साधन करते हैं उसे उपासना अथवा साधन की संज्ञा दी है।

जब पूज्य स्वामी जी हमारे बीच में थे, जगह-जगह तथा घर-घर सामूहिक उपासना होती थी। अत: हमारी उपासना की विधि का यथोचित ज्ञान कराने के लिए **हमारी उपासना** पहली बार सन् 1951 में लिखी गई थी। भूमिका के 'दो शब्द', ज्योति, आरती तथा प्रसाद के विषय उस पुस्तिका के लिए पूज्य स्वामी जी से ही सानुरोध लिखवाए गए थे। उपासना के सम्बन्ध में और अधिक जानकारी उस समय पूज्य स्वामी जी से ही मिल जाया करती थी।

अब स्थिति दूसरी है। पूज्य स्वामी जी की स्थूल उपस्थिति के अभाव में उपासना सम्बन्धी अनेक गुत्थियाँ उलझी रह जाती हैं। साधक की समझ में नहीं आता कि क्या करें। वैसी सभी समस्याओं का हल पूज्य स्वामी जी अपनी पुस्तकों तथा अन्य लिखित सामग्री में दे गए हैं, किन्तु उसे खोजना थोड़ा कठिन है। जो लगन वाले हैं, जो खोज में जुट जाते हैं, खोज लेते हैं। परन्तु सभी के लिए तो यह सम्भव नहीं। नए प्रवेश करने वाले साधकों को तो और भी कठिन है।

शायद इसी दृष्टिकोण से प्रेरित हो परिवार के कुछ सदस्यों ने **हमारी उपासना** के इस तीसरे संस्करण में कुछ और अधिक सामग्री दिए जाने

की माँग की। फल:स्वरूप, यह नया संस्करण जिसने इस पुस्तक को एकदम नया रूप दे दिया है, साधकों की सेवा में प्रस्तुत है। कुछ और नए विषय जैसे कि उपासना के मार्ग – आरोह तथा अवरोह, हमारा साधन–पथ, मन्त्र, इष्ट और आकार, ध्यान, अधिनायक, जाप, माला, कुछ अनुभूतियाँ और उपासना की कसौटी – जो उपासना से सम्बन्धित थे और जोड़ दिए गए हैं। शेष, पहले संस्करण में दिए विषयों को भी काफी विस्तार से लिखा गया है।

प्रयास रहा है कि इस संस्करण में उपासना सम्बन्धी सभी बातों का वर्णन विस्तार से साधकों को मिल सके। एतदर्थ, पूज्य स्वामी जी की पुस्तकों तथा साधकों को लिखे पत्रों से जो भी सामग्री, जहाँ भी मिली है उपयोग में लाई गई है। कोशिश यह रही है कि पूज्य स्वामी जी की भाषा, जहाँ तक सम्भव हो सके ज्यों की त्यों रहे। फिर भी, अपनी भाषा में प्रवाह रखने के लिए, सामान्य परिवर्तन करना पड़ा है। कहीं–कहीं परिच्छेद के परिच्छेद पूज्य स्वामी जी की ही भाषा में दिए गए हैं।

मुझे आशा है कि जिज्ञासु साधकों को इसमें ऐच्छिक सामग्री मिल सकेगी। नए प्रवेश करने वाले साधकों को तो यह विशेष उपयोगी सिद्ध होगी। उपासना सम्बन्धी सभी सामग्री एक जगह होने के कारण इस विषय पर मनन करने के लिए पुराने साधकों को भी सुविधा रहेगी।

थोड़े से साधक भी यदि इससे लाभान्वित हो सके तो यह तुच्छ प्रयास मैं सफल हुआ समझूँगा।

लखनऊ
27.9.1970

श्री गुरु चरणों में
पुरुषोत्तम भटनागर, एम.एस.सी.

प्रथम संस्करण की भूमिका

दिन भर में एक या दो घंटे अपने विकास के लिए, प्रभु-चरणों से प्रीति उत्पन्न करने के लिए, उस माँ, महाशक्ति से एक हो जाने के लिए हम जो साधना करते हैं उसी को यहाँ पर मैंने 'उपासना' शब्द से द्योतित किया है। ऐसा देखा गया है कि पूज्य स्वामी जी के सम्पर्क में आने पर भी साधक अपने संकोच के कारण इस उपासना के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं कर पाते। फलतः वे वह करते रहते हैं जो उन्हें नहीं करना चाहिए।

आरोह पथ के ग्रन्थ व पत्रिकाएँ सुलभ होने के कारण ध्यान करने का, मन से लड़ने झगड़ने का, तथा अकड़कर बैठने का स्वभाव पड़ चुका होता है। इस स्वभाव के कारण तथा यह न जानने के कारण कि हमारे इस अवरोह के पथ में इन सबका कोई महत्व नहीं है, यह ध्यानादि का करना छोड़ते नहीं बनता। परिणाम-स्वरूप महीनों और वर्षों की साधना के उपरान्त भी साधक को प्रगति के चिन्ह नहीं दीखते और उसे निराशा होती है।

साधना में अग्रगति के लिए यह अनिवार्य है कि हम अपनी उपासना के बारे में अधिक से अधिक जितना जान सकते हैं जानें। आध्यात्मिक साधन भाग-1 का अध्ययन इस बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए जरूरी है। परन्तु पता लगता है कि साधक उसे पढ़ने का कष्ट नहीं करते या पढ़ कर, मनन कर उस पर चलने का प्रयास नहीं करते। यह हमारा दुर्भाग्य नहीं तो क्या है? अपने और दूसरों के अनुभवों से मैं जानता हूँ कि साधना के क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए केवल मात्र पुस्तकों की ही जानकारी पर्याप्त नहीं होती परन्तु यह भी आवश्यक होता है कि हम अपने पथ-प्रदर्शक से पत्र-व्यवहार द्वारा सदैव सम्पर्क में रहें।

अपनी कठिनाइयाँ, अपनी अनुभूतियाँ तथा जो भी विशेष बातें मार्ग में मिलें उन्हें हमें पथ-प्रदर्शक के सम्मुख रखना ही चाहिए। तभी हम तीव्र गति से मार्ग पर आगे बढ़ सकेंगे। हमारा संकोच, हमारे और पथ-प्रदर्शक के बीच में दीवार खड़ी कर देता है जिसके कारण हमारे पथ-प्रदर्शक चाहते हुए भी हमारी सहायता नहीं कर पाते। जितना ही हम उनसे खुल पाएँगे उतना ही हमें लाभ होगा - ऐसा ही अनुभव सिखाता है।

यद्यपि 'आध्यात्मिक साधन भाग-1' के आभ्यान्तरिक साधन' नामक भाग के विभिन्न परिच्छेदों तथा 'पत्तियाँ और फूल' में इस उपासना के बारे में काफी कुछ श्री स्वामी जी ने लिखा है, परन्तु फिर भी विधिवत् उपासना क्रम की चर्चा नहीं की गई है। पूज्य स्वामी जी की विचारधारा के आधार पर इस पुस्तक में हमारी उपासना के क्रियात्मक रूप का संक्षेप में वर्णन है। वास्तव में यह पुस्तिका, श्री स्वामी जी की पुस्तकों तथा कुछ पत्रों से लिए गए अवतरणों का एक संकलन मात्र है जो हमारे उपासना-क्रम पर संक्षेप में प्रकाश डालती है। इनका यहाँ मैंने इस प्रकार से संकलन किया है कि जो साधक साधना करने के इच्छुक हों उनकी इसके द्वारा कुछ सहायता हो और वे यह जानें कि हमारी उपासना क्या है और किस प्रकार उसका साधन किया जाता है।

झाँसी
जनवरी, 1951

श्री गुरु चरणों में
पुरुषोत्तम भटनागर, एम.एस.सी.

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
दो शब्द	5
प्रकाशक की ओर से	6
चतुर्थ संस्करण की भूमिका	7
तृतीय संस्करण की भूमिका	9
प्रथम संस्करण की भूमिका	11
गुरु वन्दना	15
1. हमारी उपासना - एक परिचय	17
2. उपासना का मार्ग	20
3. मन्त्र-शक्ति और उसकी उपयोगिता	23
4. इष्ट और आकार	25
5. ध्यान	26
6. शारीरिक स्वच्छता	27
7. समय	28
8. स्थान	31
9. आसन	33
10. ज्योति	35
11. अधिनायक	38

12. प्रबोधन 40
13. धारणा 41
14. उपासना का क्रम 44
15. उपासना का प्रारम्भ 45
16. जाप और माला 48
17. उपासना की पूर्ति 51
18. व्यक्तिगत उपासना 57
19. जाप सम्बन्धी कुछ विशेष बातें 58
20. भजन संकीर्तन 62
21. आरती 67
22. प्रसाद 69
23. कुछ अनुभूतियाँ 71
24. साधना की कसौटी 75
25. सम्मिलित उपासना के बारे में कुछ अन्य बातें 78
26. प्रार्थना के लिए कुछ भाव 83
27. आत्म निवेदन के पद 86
28. पूजन-सामग्री 91

गुरु वन्दना

गुरूर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णोः, गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरु साक्षात् परब्रह्मः, तस्मै श्री गुरुवे नमः।।1।।

अखण्ड मण्डलाकारं व्याप्तं येन् चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः।।2।।

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिम्।
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादि लक्ष्यम्।।3।।

एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं।
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि।।4।।

ले चलो कल्याण-मग में देव ! तुम पथ रम्य से,
सब साधनों के बोध से सम्पन्न हो तुम हे हरे।

दूर कर दो वक्रता, अग्ने ! जो हम में है सनी,
बार-बार बहु बार तुमको वन्दना हो, अग्रणी।।

अपूर्णताओं से परे पूर्णत्व के शुभ-धाम में,
ले चलो हे देव ! हमको अज्ञता से ज्ञान में।

मरणधर्मा हम रहें न, अमर कर दो हे प्रभो,
सत्य दो, शुभ ज्योति दो, अमरत्व का शुभ दान दो।

गुरु वन्दना

जो दिखाता पन्थ प्यारा,
मार्ग का बन जो उजाला।

जिसने प्रेम का दीप बाला,
बन गया है जो सहारा।।

उसके चरण में झुक रहा है,
भाव से यह सिर हमारा।।1।।

माँ का पावन प्रेम पाकर,
माँ चरण में सिर नवाकर।

अपना आपा सब गवाँकर,
शक्ति को जिसने पसारा।।

उसके चरण में झुक रहा है,
भाव से यह सिर हमारा।।2।।

माँ चरण में लोटना जिसने सिखाया,
सर्वस्व-अर्पण पाठ है जिसने पढ़ाया।

चिन्ता रहित जिस प्रेम ने हमको बनाया,
हमको **माता** की अमर गोदी बिठाया।

उसके चरण में झुक रहा है,
भाव से यह सिर हमारा।।3।।

1
हमारी उपासना - एक परिचय

हमारी उपासना एक विशुद्ध आध्यात्मिक साधना है। यह जीवन को सर्वांगीण पूर्ण कर देने वाली है। भीतर से भी पूर्ण और बाहर से भी पूर्ण। शान्ति में भी पूर्ण और क्रिया में भी पूर्ण। मनुष्यत्व में पूर्ण और दिव्यत्व में पूर्ण। शरीर में पूर्ण, प्राण में पूर्ण, हृदय तथा बुद्धि में पूर्ण और इनसे परे आत्मतत्व की अभिव्यक्ति में पूर्ण। यह बहुबिधि पूर्णत्व ही हमारी उपासना का मंगलसूत्र है। इसी की सिद्धि के लिए हमें उपासना में जी जान से लग जाना है।

हमारी उपासना एक व्यापक साधना भी है जो प्रभु की कृपा का द्वार खोल देती है। वह कृपा जैसे भी आए और जिधर से भी आए उसका यहाँ स्वागत है। हमारे लक्ष्य का भी निर्णय प्रभु ही करते हैं।

बाह्य अभिव्यक्ति जिसे व्यापक अर्थों में दर्शन कहते हैं, अवतरण की पराकाष्ठा, आमूलचूल परिवर्तन आदि, सभी उपासना के साथ-साथ होते जाते हैं। इसके साथ ही साथ उस परम चेतना का अवतरण होता है जो उसके लीलामय भाव को हमारे लिए प्रकट कर देता है। प्रभु चरणों में प्रीति जगने लगती है। साधना की सिद्धि की भी चिन्ता नहीं रहती। चाह होती है हमेशा बनी रहने वाली स्मृति की, प्रेम की, और अटूट विश्वास होता है उसकी कृपा पर। अपने किए कराए को, नियम-संयम को, जप-साधन और सेवा को विनम्रता से प्रभु चरणों में रख देते हैं और उसकी कृपा पर निर्भर रहते हैं। आश्रय लेते हैं तो प्रभु कृपा का, अपने साधन का नहीं। जितना उसकी कृपा को स्वीकार करते हैं उतना अन्तरात्मा उसके आगे झुकता है और अधिकाधिक कृपा पात्र बनता है।

हम साधना की सिद्धि की भी चिन्ता नहीं करते। साधना को जीवन का ध्येय बना लेने से सिद्धि स्वत: हो जाती है, यह विश्वास रखते हैं। साधना-उपासना कब समाप्त होगी, ऐसा भी नहीं सोचते। सम्भवत: इस शरीर में समाप्त न हो। सम्भव है कई और जन्म लगें। हम इतनी कीमत देने के लिए तैयार रहते हैं। यदि प्रभु की कृपा पर ही आश्रित होना है, यदि समर्पण का मार्ग अपनाना है तो उपासना की समाप्ति की क्या चिन्ता? इसे भी प्रभु के अर्पण कर देते हैं।

हमारी उपासना का साधक जीता है केवलमात्र आध्यात्मिक विकास के लिए। धन के लिए नहीं, वैभव के लिए नहीं, बन्धु तथा बान्धवों के लिए नहीं, लोकोपकार के लिए भी नहीं और न ही कला कौशल्य के लिए। वह जीना जो आध्यात्मिक विकास के लिए उपयोगी नहीं, उसकी दृष्टि में निरर्थक होता है। उसके आदर्श में स्थान सभी के लिए होता है, परन्तु स्वतन्त्र रूप से नहीं।

हमारी उपासना जिस साधना के सिद्धान्तों पर आधारित है उसमें संसार से भागना नहीं होता और न ही संसार से घृणा करनी होती है। संसार से भागने का प्रयत्न अपनी उपासना से, अपनी साधना से भागने का प्रयत्न है और आत्मघातक है। जिस योग्य साधक है उसी परिस्थिति में रखा गया है। उस परिस्थिति की समस्याओं को हल करके ही आगे बढ़ा जा सकता है। यहाँ साधक, जो है, जहाँ है, जैसा है उसको समतापूर्वक समझकर आगे बढ़ता है। वह भोग से डरता नहीं, और न ही उसके पीछे भागता है। जो भोग से डरता है, भोग पिशाचवत् उसका पीछा करता है वह संसार के कृत्यों को भी दूभर नहीं समझता, साधना का अंग समझकर उनमें प्रवृत्त होता है।

लोग कहते हैं कामिनी-कंचन बाँधते हैं। हमारी विचारधारा कहती है काम और लोभ बाँधते हैं। बेचारी कामिनी और रुपए का दोष नहीं। हमारी उपासना में प्रभु कृपा से यह दोनों - काम और लोभ - क्षय को प्राप्त होते हैं। जंगल में जाकर काम क्षीण नहीं होता, गृहस्थ में

रहकर होता है। यहाँ तो समूचे जीवन को ही साधनामय बनाना होता है। अत: तप, त्याग तथा वैराग्य हमारी साधना के आदर्श नहीं बन पाते। यहाँ तो माँग है अभीप्सा की, समर्पण की, अनन्यता की, प्रेम तथा सेवा की। यहाँ माँग है सौम्यता की, पूरी तरह से प्रभु का होकर उसी के लिए जीने की।

2
उपासना का मार्ग

हमारी उपासना अवरोह मार्ग (Path of Descent) की है, आरोह मार्ग (Path of Ascent) की नहीं। आरोह के मार्ग में शक्ति को मूलाधार अथवा किसी अन्य केन्द्र से जागृत करके सहस्रार में ले जाकर वहाँ लीन करने का प्रयत्न किया जाता है। व्यक्तिगत प्रयत्न की प्रधानता ही उसका मूलमन्त्र है तथा संयम की एक अच्छी स्थिति इस आरोह पथ पर चलने वालों के लिए परम आवश्यक है। हठ योग, लय योग (शब्द योग), राज योग, ज्ञान योग, विशुद्ध कर्मयोग इसी पथ में समाविष्ट हैं। फ्रीमेसंस (Freemasons), रोजीक्रुशियंस (Rosicrucians) तथा थियोसोफिस्ट साधनाएँ भी इसी पथ की हैं। हमारी उपासना का पथ यह नहीं है।

आरोह से ठीक प्रतिकूल पथ अवरोह का है। अवरोह का अर्थ होता है उतरना। विश्व-केन्द्र से आने वाली शक्ति की धाराएँ नीचे के केन्द्रों में उतर कर उनका परिशोधन करती हैं तथा उनके विकास को अग्रसर करती हैं। यह अवरोहण सभी केन्द्रों से होता है और सहस्रार से भी। सहस्रार की स्थिति सबसे ऊपर होने के कारण अवरोहण मुख्यत: यहीं से होता है। यहाँ से चली हुई धारा नीचे वाले सभी केन्द्रों को प्रभावित कर उनका विकास, परिशोधन तथा संगठन करने लग जाती है। यदि महाशक्ति का यह प्रवाह, यह अवतरण एक बार तीव्र वेग से चालू हो जाए तो वह स्वयं इस कार्य की पूर्ति कर देता है। कालान्तर में शक्ति की धाराएँ नीचे से भी स्वत: ऊपर को जाने लगती है। अवरोह के अधीन आरोह की भी प्रतिक्रियाएँ होने लगती हैं और परम साम्य की अवस्था आ जाती है। हमारी उपासना इसी अवरोह पथ की साधना है।

हमारे उपासना मार्ग पर चलने के इच्छुक साधकों को तीन बातें स्वीकार करनी जरूरी हैं। वे हैं - (1) प्रभु-शक्ति में विश्वास, (2) प्रभु-कृपा में विश्वास, तथा (3) यह विश्वास कि 'नाम' (मन्त्र) प्रभु-कृपा का वाहन है जिसके द्वारा हम महाशक्ति से युक्त हो सकते हैं।

प्रभु-शक्ति का आवाहन तथा उसकी क्रिया का अवलम्बन हमारे योग की आधारशिला है। अत: उपासना के विषय में भी हम उसी की ओर देखते हैं। स्वयं पूर्ण साक्षी बन कर शक्ति की सतत चलने वाली क्रिया को देखते हैं।

हमारी उपासना का आधार इन्द्रिय संयम नहीं है, जिससे शरीर को शिथिल करने से प्राप्त किया जा सके, भले ही अस्थाई रूप से। हमारी साधना का आधार है प्रभु-शक्ति स्वयं। उसके अवतरण से, उसकी क्रिया के प्रभाव से इन्द्रिय संयम स्वयं प्राप्त होने वाली अवस्था है। साधक को इस आंशिक उद्देश्य के लिए सीधा उपाय करने की आवश्यकता नहीं होती।

हमारा मार्ग प्रभु कृपा का मार्ग है। इसमें हमारा बल अपना साधन नहीं, उसकी कृपा हमारा साधन है। वह सतत हम पर बनी हुई है। जितना ही हम अपने को उसके आश्रित करते हैं उतनी ही वह अधिक प्रतीति में आती चली जाती है। 'नाम' की डोरी से हम प्रभु-पद से संयुक्त हैं। 'नाम' के स्मरण से प्रभु-शक्ति का प्रवाह हम में आता है और वह हमें दिव्य करता चला जाता है। आन्तरिक स्थिरता तथा समता इसके अवतरण का प्रथम लक्षण है। आनन्द भी उसी शक्ति के अवतरण का सूचक है।

जितना साधन बन पड़ता है हम करते हैं। उसके लिए प्रभु को धन्यवाद देते हैं। प्रभु से संयुक्त होने के लिए, सर्वथा उसका हो जाने के लिए हृदय में आकांक्षा - प्रबल इच्छा - उत्पन्न करते हैं और अधिक से अधिक साधन करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं।

हमारे मार्ग में साधक की सबसे बड़ी आवश्यकता है – लगन। उसका जीवन, जीवन का प्रत्येक कृत्य प्रभु के लिए ही होता है। स्वप्न में भी उसे अपने किसी स्वकीय लक्ष्य की स्मृति नहीं होती।

यहाँ हमारी लगन ही हमारी उन्नति का मापदण्ड होती है। प्रभु चरणों में जितनी वह प्रीति हमारे हृदय में जग जाती है, जितनी वह प्रीति स्थिर होती है और जितना हम उसकी कृपा पर निर्भर रहना सीख जाते हैं उतना ही हम उसकी ओर बढ़ते चले जाते हैं। हमारा अन्त:करण निर्मल हो जाता है और उसकी कृपा हमें पवित्र करके उसकी ओर उठाती चली जाती है। ये मौलिक बातें हैं हमारे मार्ग की।

महाशक्ति प्रभु की ही शक्ति है। वह भगवान ही है। अपनी उपासना में हम इसी महाशक्ति को माँ भी कहते हैं। माँ, महाशक्ति तथा भगवान में कोई अन्तर नहीं। वह परमसत्ता माँ भी है, पिता भी है। जब उसके मातृत्व का विचार करते हैं तो माँ कहते हैं, अन्यथा प्रभु, भगवान, पिता आदि जिस भावना से उसे पुकारा जाता है उसी के अनुकूल उत्तर आता है।

3
मन्त्र-शक्ति और उसकी उपयोगिता

यदि हमें ऐसे मन्त्र की प्राप्ति हो जाए जिसके द्वारा व्यक्ति में महाशक्ति की धारा का प्रवाह प्रवेश कर जाए और क्रिया करने लगे तो अध्याम विकास की प्रगति विशेष तीव्र की जा सकती है। मन्त्र के प्रभाव से ही महाशक्ति का अवतरण होगा और उसी की क्रिया से आत्मशक्ति का विकास भी होता जाएगा, जब तक कि विकास की चरम सीमा प्राप्त न हो जाए और पूर्ण शक्ति साम्य न हो।

जिस व्यक्ति की इच्छा-शक्ति महाशक्ति से पूर्णैक्य को प्राप्त कर गई है उसका निर्माण किया मन्त्र ही महाशक्ति के प्रवाह को प्रेरित कर सकता है। जिस व्यक्ति को महाशक्ति की पूर्ण कृपा प्राप्त हो, वही इस कार्य के लिए समर्थ है।

साधक स्वयं मन्त्र का निर्माण नहीं कर सकता। उसका मन्त्र उसकी वर्तमान स्थिति का प्रतिरूप होगा और महाशक्ति के प्रवाह को प्रेरित न कर पाएगा। और जो इस काम को नहीं कर सकता वह मन्त्र हमारे किसी काम का नहीं है, वह मन्त्र निर्वीर्य शब्द-समूह है।

अत: इस आभ्यन्तरिक साधन के लिए ऐसा व्यक्ति अनिवार्य है जो हमें ऐसा मन्त्र प्रदान कर सके जिसके द्वारा हममें महाशक्ति का प्रवाह प्रेरित हो जाए। वह स्वयं सामर्थ्य से युक्त होगा तो हमें सामर्थ्यवान् मन्त्र प्रदान कर सकेगा, यदि उसमें ही महाशक्ति का प्रवाह प्रेरित नहीं हो रहा है और हो भी रहा है परन्तु उसमें यह योग्यता नहीं कि दूसरे में मन्त्र के द्वारा इसको करवा सके, तो आभ्यन्तरिक साधन से लाभ होना कठिन है।

जाप के द्वारा मन्त्र क्रियाशील होता है और धीरे-धीरे बलशाली भी, समय से सम्भावना वास्तविकता के रूप में प्रगट हो जाती है।

मन्त्रदान में मन्त्र देने वाले का संकल्प तथा ग्रहण करने वाले की ग्रहणशीलता ही महत्व की वस्तु है। यदि मन्त्र देने वाले का संकल्प प्रबल है और दूसरा व्यक्ति पहले ही तैयार है तो देशान्तर में भी मन्त्र संचार हो सकता है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

हमारी उपासना में मन्त्र का अर्थ ही उसका वास्तविक अर्थ अथवा स्वरूप नहीं होता। मन्त्र के अक्षरों द्वारा मन्त्र से होने वाली क्रिया का केवल बोध होता है। अक्षरों के बार-बार उच्चारण करने से शक्ति के अवतरण की क्रिया होने लगती है और अधिकाधिक वेग को प्राप्त होती चली जाती है। **यह क्रिया ही मन्त्र का वास्तविक रूप है।**

मन्त्र के स्पन्दन की अनुभूति ही वास्तव में मन्त्र का ध्येय है। उस स्पन्दन की प्रतीति में ही ध्यान लगाया जाता है। जितना अधिक इस स्पन्दन में चित्त लगता है उतनी ही मन्त्र की क्रिया प्रबल होती है और उतना ही अधिक शक्ति का अवतरण।

जिस साधन पथ पर हम चलते हैं, राम मन्त्र उसके अनुकूल है। वह हमारे लिए सजीव, शक्ति-सम्पन्न तथा आशीर्वाद युक्त मन्त्र है।

इस मन्त्र में राम का ही सतत स्मरण बना रहना जरूरी है। जाप हम राम का ही करते हैं। कभी-कभी भाव तरंग में आकर साधक माँ, माँ का जाप करने लग जाते हैं। राम नहीं निकलता। यह गलत है। राम नाम माँ की देन है, माँ का आदेश है। माँ के आदेश का तिरस्कार माँ का तिरस्कार है। ठीक समझ लेने से राम नाम ही निकलता है। यह माँ के समीप होने का रास्ता है। माँ के प्यार की ही माँग है कि नाम का चिन्तन हो। हमारी उपासना में नाम चलना ही चाहिए।

4
इष्ट और आकार

हमारा कोई इष्ट विशेष नहीं है। हम सभी इष्टों में भगवद्–शक्ति का दर्शन और अनुभव कर उसके आगे मस्तिष्क टेकते हैं। क्योंकि हमारी उपासना शक्ति की उपासना है अत: हम किसी भी इष्ट के आकार का उपयोग लाभपूर्वक कर सकते हैं परन्तु अनिवार्यरूपेण कदापि नहीं। आकार का सहारा लेने की ओर यदि झुकाव हो तो ऐसे आकार अथवा प्रतीक को ग्रहण कर लेते हैं जिससे ऐच्छिक फल प्राप्त हो सके। कभी–कभी आकार के ध्यान से आरम्भ करने पर भी हम उसे बनाए रखने का प्रयत्न नहीं करते। वह बना रहे तो अच्छा, न बना रहे तो अच्छा। बनाए रखने की इच्छा, नसों तथा मन में एक तनाव उत्पन्न करती है जिससे मन्त्र की वास्तविक क्रिया में बाधा पहुँचने के कारण शक्ति के अवतरण में रुकावट पड़ती है।

किसी आकृति विशेष का दर्शन भी हमारी उपासना का लक्ष्य नहीं है। इसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

5
ध्यान

इष्ट की आकृति, ज्योति की लौ अथवा किसी केन्द्र - भ्रूमध्य, नासिकाग्र, हृदयादि - में ध्यान केन्द्रित करने का हमारी उपासना में कोई स्थान नहीं है। यहाँ किसी भी केन्द्र में ध्यान करने की आवश्यकता नहीं है। महाशक्ति की क्रिया स्वयं आवश्यकतानुसार भिन्न-भिन्न केन्द्रों में ध्यान आकर्षित कर देती है और समय-समय पर बदलती भी रहती है। मन्त्र के स्पन्दन में ही चित्त लगाना होता है बाकी सब स्वयं हो जाता है।

6
शारीरिक स्वच्छता

शरीर और वस्त्र जितने अधिक स्वच्छ होंगे उतनी ही अधिक शक्ति अवतरित होने की आशा की जाती है। अत: स्नान करके, स्वच्छ वस्त्रों को पहनकर बैठने से एकाग्रता में सहायता मिलती है – इसमें सन्देह नहीं। किन्तु स्नान आदि का कोई बन्धन नहीं है। स्नान की ख़ातिर प्रात: के शान्त, एकान्त समय को खो देना उचित नहीं। स्नान हो सके तो बहुत अच्छा। हाथ-पाँव तो धोकर ही उपासना में बैठना चाहिए।

7
समय

उपासना का समय निश्चित कर लेना परम आवश्यक है। इससे नियम अनायास बना रहता है। सांसारिक कार्यों में व्यस्त रहकर, बिना समय नियत किए हुए, नियम को निभाना कठिन होता है। **बिना नियम के की गई उपासना फलवती हो सकेगी, यह आवश्यक नहीं है।** नन्हें पौधे को यदि एक दिन भी पानी न मिले तो वह सूख जाता है और उसे पुनरुज्जीवित करना कठिन हो जाता है। ऐसे ही एक दिन भी उपासना छोड़ देने का अर्थ बहुत हुआ करता है। यदि किन्हीं विशेष परिस्थितियों में उस समय उपासना असम्भव ही हो जाए तो भगवान का चिन्तन तो होना ही चाहिए।

परिच्छेद

सतत स्मरण तो हर समय हो सकता है परन्तु बैठकर उपासना करने के लिए समय निश्चित करना ही चाहिए। नित्य प्रति एक ही समय बैठा जाए तो उस समय अन्तरात्मा को उपासना की भूख लगने लगती है। यहाँ तक सम्भव है कि स्वभाव बन जाने पर उस समय कुछ और हो ही न पाए और बलात् उपासना में बैठना पड़े।

सबसे उत्तम समय ब्रह्ममुहूर्त, सूर्योदय से ढाई घंटे पहले का समझा जाता है। उस समय वातावरण शान्त होता है। शरीर भी शान्त होता है। सभी ऋतुओं में ठण्डक होती है और ऐसे समय में, भगवान का चिन्तन करने वाले प्रायः सभी जग जाया करते हैं। किन्तु सभी के लिए यह सम्भव नहीं कि ब्रह्ममुहूर्त में उठ सकें। कई लोगों को अनिवार्यतः ही सोने में कुछ देरी हो जाती है और काम वह इतना करते हैं कि

उनके लिए पर्याप्त निद्रा आवश्यक है। यदि पूरा आराम न किया जाएगा तो उपासना में भी विघ्न पड़ेगा। अत: समय का निर्णय करने में यह ध्यान करने योग्य बात है कि जितना जल्दी बैठा जाएगा उतना ही अच्छा रहेगा।

प्रात: सूर्योदय के साथ ही साथ बैठना भी विशेष लाभकारी है। इस समय बाह्य प्राण की अवस्था में एक विशेष परिवर्तन होता है, जिसका प्रभाव व्यक्ति पर भी पड़ता है। उपासना में इससे सहायता मिलती है। इसी प्रकार सन्ध्या समय सूर्यास्त के साथ ही साथ बैठना अति उत्तम है। प्रात: सूर्योदय के समय की तरह प्राण का परिवर्तन शाम को भी होता है। प्राण में विशेष साम्य आ जाता है।

पूज्य स्वामी जी ने प्रात:काल की उपासना का समय निश्चित किया है। साधक, जिन्हें पता है, यथासम्भव उस समय का पालन करते हैं। वह ऋतुओं के अनुसार बदलता है। साधक अपने-अपने स्थान पर उसी समय बैठते हैं। उस समय बैठने से विशेष लाभ होता है। वे समय इस प्रकार हैं -

	प्रात:
दिसम्बर-जनवरी	5.30 से 6.30
फरवरी	5.15 से 6.15
मार्च	5.00 से 6.00
अप्रैल	4.45 से 5.45
मई, जून, जुलाई	4.15 से 5.15
अगस्त-सितम्बर	4.30 से 5.30
अक्तूबर	4.45 से 5.45
नवम्बर	5.00 से 6.00

आरम्भ में समय के नियम को पालन करने में बहुत कष्ट होता है, कठिनाई का सामना करना पड़ता है। लगन और दृढ़ता की कमी

के कारण प्रायः समय गड़बड़ा जाया करता है और समय का नियम नहीं निभ पाता। याद रखिए यह नियम तभी निभ पाएगा जब दृढ़ता बर्ती जाएगी – घर वालों के साथ भी और मिलने वालों के साथ भी। जल्दी ही मिलने वाले समझ जाएँगे और अड़चनें कम होने लगेंगी। यह साधक की दृढ़ता की, लगन की परीक्षा भी तो है। अतः उपासना के लिए कम से कम अड़चन वाला तथा सबसे अधिक उपयुक्त समय ढूँढना चाहिए।

8
स्थान

जितना शान्त, हल्ले-गुल्ले से बचा हुआ स्थान होगा उतना ही अच्छा है। हल्ले-गुल्ले से अनजाने ही शरीर में, विशेषकर ज्ञान-तन्तुओं में एक प्रकार का तनाव होने की सम्भावना रहती है। किन्तु ऐसे स्थान का होना बिल्कुल ही अनिवार्य नहीं है। हमारे शरीरादि में परिस्थिति के अनुसार बदल जाने की योग्यता है। हल्ले-गुल्ले की परवाह न करनी और उसके अस्तित्व को महत्व न देना ही सुगम तथा लाभकारी रास्ता है। अन्यथा स्वभाव में चिड़चिड़ापन आने की सम्भावना है। जिसका निवारण सहज में हो सके उस हल्ले-गुल्ले को तो दूर करना ही चाहिए।

यदि उपासना का स्थान अलग कमरा हो और उसका किसी अन्य काम के लिए उपयोग न हो तो बहुत अच्छा। कमरा मन्त्र की तरंगों से, हमारे उच्च भावों के स्पन्दन से भर जाता है। उस कमरे में प्रवेश करते ही उन भाव-तरंगों के सम्पर्क से, हमारे मन-हृदयादि में उन भावों की सहज जागृति हो जाती है। इस प्रकार बाहर के संस्कार के प्रभाव से हम बच जाते हैं।

गर्मियों में, खुले में, छत पर अथवा अन्यत्र बैठना अच्छा रहता है। वैसे भी जब अवसर मिले खुले में बैठना चाहिए। खुले में शक्ति का विचित्र स्वच्छन्द विलास होता है।

परिच्छेद

स्थान का नित्य प्रति परिवर्तन हितकर नहीं। जहाँ हम बैठते हैं वहाँ स्पन्दन रह जाते हैं। शक्ति के विकास का प्रभाव तक रह जाता

है। वहाँ बैठने पर उसकी सहायता मिलती है। यह बात खुले में भी बैठने पर लागू है, जैसे कमरे में।

सामूहिक उपासना में बैठने के लिए यदि देर हो गई हो और अपने निश्चित स्थान तक पहुँचने के लिए दूसरे साधकों की उपासना में जरा भी विघ्न पड़ने की सम्भावना हो तो वैसा करना उचित नहीं। पीछे, जहाँ कहीं सुविधा से स्थान मिल सके, शान्ति से बैठ जाना चाहिए।

विविध प्रकार की धूपों द्वारा स्थान को सुगन्धित करने से हमारे सूक्ष्म शरीर पर, मन पर, प्रभाव पड़ता है – इसमें सन्देह नहीं। अतः इससे सहायता ली जा सकती है।

9
आसन

हमारी उपासना में बैठने के लिए किसी निश्चित आसन का विधान नहीं है। आसन ऐसा होना चाहिए जिसमें महाशक्ति की क्रियाएँ, सुविधापूर्वक, बिना रुकावट के, पूर्ण स्वच्छन्दता से हो सकें। वैसे सुखासन (पालथी मार कर बैठना) अथवा स्वस्तिकासन ठीक रहते हैं।

स्वस्तिकासनः पालथी मार कर बैठकर दाहिने पाँव को कुछ बढ़ाकर बाँए पाँव पर रख दिया जाए (अथवा इसके विपरीत बाँए पाँव को दाँए पाँव पर) तथा हाथ, गोदी में एक हाथ पर दूसरा हाथ, हथेली पर रहे तो स्वस्तिकासन कहलाता है। स्वस्तिकासन तो सभी प्रकार से उपयुक्त है।

प्रायः यह समझा जाता है कि रीढ़ की हड्डी बिल्कुल सीधी रहनी चाहिए। आरोह पथ के साधकों के लिए ऐसा करना अनिवार्य है; किन्तु अवरोह पथ वालों के लिए, हमारी उपासना करने वालों के लिए, इस प्रकार का कोई नियम नहीं है। इसके विपरीत शरीर को जितना अधिक शिथिल किया जाए अर्थात् ढ़ीला छोड़ा जाए उतना अच्छा। अतः आसन में साधक को स्वयं इधर उधर हिलकर उस स्थिति को ढूँढ निकालना होगा, जिसमें कम से कम दबाव, कम से कम तनाव, मासपेशियों तथा शरीर के किसी भाग पर पड़े। वैसे बैठते समय आरम्भ में रीढ़ की हड्डी सीधी ही रहनी चाहिए। शरीर ढीला छोड़ने पर यह स्वतः कुछ झुक जाएगी। ढीला करना है मन को, शरीर को, जिससे तनाव कम से कम हो।

भीतरी क्रिया के उनुरूप आसन के न होने से बैठने में बैचेनी हो जाती है। अत: शक्ति की क्रिया के दबाव के कारण आसन में स्वत: अनुकूल परिवर्तन हो जाता है ऐसी अवस्था में भीतरी प्रेरणा के अनुसार आसन बदल लेना ही चाहिए। वैसे भी थक जाने पर आसन बदलना चाहिए। धीरे-धीरे एक आसन में अधिक देर तक बैठने की योग्यता स्वयं आ जाती है। उपासना की प्रगति की, यह योग्यता, एक सूचक भी है।

हाथों की स्थिति का प्रभाव भी भीतर होने वाली शक्ति की क्रिया पर पड़ता है। हाथों को घुटनों पर रखना, प्राय: उपयुक्त नहीं रहता। बाहें शिथिल नहीं हो सकतीं। हाथों को गोदी में रखना उपयुक्त होता है। अंगुलियों में अंगुलियों को मिलाकर भी गोदी में रख जा सकता है।

शरीर का अधिकाधिक शैथिल्य और आन्तरिक प्रेरणा – यही दो वास्तव में अन्तिम नियम हैं। इनके अनुकूल ही सभी बातों का निर्णय होना चाहिए।

उपासना के बीच में शरीर का मुड़ना, गर्दन का जरा घूम जाना, उठ जाना, झुक जाना अथवा शरीर का किसी ओर झुक जाना आदि सम्भव है। रीढ़ की हड्डी भी कभी सीधी होती है कभी झुक जाती है। ऐसी स्थितियों से घबराना नहीं है। यह अपने आप हट जाया करती हैं।

10
ज्योति

हमारी उपासना में ज्योति-शिखा वह पात्र है जिसमें महाशक्ति अवतरित होती है, वह आसन है जिस पर प्रभु शक्ति के रूप में स्वयं आ विराजते हैं। ज्योति के जलने से स्पन्दन होते हैं। उनसे एक सूक्ष्म पात्र बन जाता है। जब आवाहन किया जाता है, महाशक्ति के प्रवाह की धारा उसमें आने लगती है। वह ज्योति, ज्योति न रहकर, महाशक्ति का वाहन बन जाती है - जैसे ज्योति-स्वरूप आसन पर स्वयं भगवान आ विराजे हों आवाहन के उपरान्त यह ज्योति साक्षात प्रभु का, महाशक्ति का, स्वरूप हो जाती है - मूर्ति में प्राण प्रतिष्ठा की भाँति।

ज्योति से चारों ओर महाशक्ति का प्रसार उपासना में बैठने वालों पर होता है। यह प्रवाह निरन्तर होता ही रहता है जब तक शान्ति मन्त्र द्वारा महाशक्ति का विसर्जन न कर दिया जाए। इस अनवरत प्रवाह के कारण ज्योति जलाकर बैठने में साधक में भी शक्ति का प्रवाह अनवरत चलता है, ज्योति की ओर से। अत: इस शक्ति के वेग से साधक अधिक बँधा रहता है। एक ओर विश्व केन्द्र से, सहस्रार में प्रवेश करने वाली शक्ति की धारा, दूसरी ओर ज्योति की ओर से आने वाली महाशक्ति की धारा साधक को शक्ति के वेग से अधिकाधिक बाँधे रखती है।

यहाँ ज्योति भगवान के किसी रूप विशेष से सम्बन्ध नहीं रखती। अत: राम, कृष्ण, शक्ति आदि, में भावना रखने वाले समान रूप से अपनी भावना को ज्योति में आरोपित कर सकते हैं। यह इस ज्योति की विशेषता है।

ज्योति के प्रति ऊँची से ऊँची भावना जागृत करनी चाहिए। ज्योति प्रज्ज्वलन के समय भावपूर्ण नमस्कार करने से इसमें सहायता मिलती

है। आवाहन के उपरान्त ज्योति को साक्षात् भगवान समझते हुए पुनः नमस्कार करके, प्रभु के सतत सामीप्य को अनुभव करना चाहिए। इससे धारणा में भी सहायता मिलती है। जब तक शान्ति मन्त्र से महाशक्ति का विसर्जन न हो जाए, ज्योति को महाशक्ति ही समझना चाहिए। उसे केवल दीप-शिखा समझ धूप-बत्ती आदि कभी न जलानी चाहिए।

यदि किसी कारणवश जाप के बीच में से उठकर जाना हो तो ज्योति-स्वरूप भगवान की उपस्थिति को न भूलिए। जाप से जाते और लौटते समयों में, नमस्कार के रूप में प्रभु की स्वीकृति से वैसा करिए। अपने किसी भी व्यवहार से ज्योति में अवतरित भगवान का निरादर न होने देना चाहिए। वास्तव में यह अन्तिम नियम है।

आरती भी ज्योति की करते हैं, भोग भी ज्योति-रूप भगवान का लगाते हैं।

यदि यह स्मरण सतत बना रहे कि यह केवल ज्योति नहीं साक्षात् भगवान विराजे हैं तो बहुत सी भूलों से बचा जा सकता है। यह स्मरण मात्र बना रहना ही ग्रहणशीलता बढ़ाने, ऊँची भावना जागृत करने तथा शक्ति के अवतरण में विशेष सहायक होता है।

ज्योति-पात्र की थाली प्रभु के आसन का ही एक अंग है। अतः उस थाली को सुगन्धित पुष्पों आदि द्वारा सुरुचिपूर्ण ढंग से सजाकर उसमें ज्योति-पात्र रखना चाहिए। भगवान को आमन्त्रित करने के लिए जितने ही अधिक भावपूर्ण ढंग से तैयारी की जाएगी उतनी ही अधिक शक्ति के अवतरण की तथा भीतर जागृति होने की सम्भावना रहेगी।

शान्ति-मन्त्र द्वारा विसर्जन के उपरान्त जगमगाती ज्योति केवलमात्र वह स्थान रह जाती है जहाँ कुछ समय के लिए प्रभु विराजे थे। अतः शक्ति का प्रभाव ज्योति में, उसके घी तथा थाली वाले पुष्पों में रह जाता है। औषधि के रूप में, भावपूर्ण ढंग से इनका प्रयोग करने से अनेक साधकों को लाभ होते देखा गया है।

सामूहिक उपासना में ज्योति जलाकर ही बैठना चाहिए, किन्तु व्यक्तिगत साधना में बैठने के लिए ज्योति का जलाना अनिवार्य नहीं। जहाँ तक हो सके जलाना तो चाहिए ही। ज्योति जलाकर बैठने से शक्ति के प्रवाह की प्रतीति अधिक मात्रा में और जल्दी अनुभूत होती है।

भगवान को ज्योति में आमन्त्रित करने के उपरान्त शान्ति-मन्त्र द्वारा उसे विदा किए बिना उपासना से कभी न उठना चाहिए। प्रभु को पहले सादर विदा करके ही उपासना का अन्त किया जाता है।

ज्योति के लिए गाय का घी हो तो सर्वोत्तम। अन्यथा भैंस का घी, वनस्पति, तिल, नारियल अथवा सरसों का तेल भी बरता जा सकता है। बिजली का लैम्प यह कार्य नहीं कर सकता।

ज्योति और महाशक्ति में भागवती चेतना में - बहुत कुछ साम्य है। ज्योति अन्धकार को दूर करती है और भगवती चेतना अज्ञान के अन्धकार को। ज्योति से नई ज्योति जलती है परन्तु पहली ज्योति में कुछ कमी नहीं होती। ऐसे ही भागवती चेतना के द्वारा दूसरे में भागवती चेतना का उदय होता है, परन्तु इससे उसमें कमी नहीं आती। उस पूर्ण में से इस विश्व का उदय होता है तो भी वह परमसत्ता पूरी ही रहती है।

11
अधिनायक

सामूहिक उपासना का संचालन करने वाले को पूज्य स्वामी जी ने अधिनायक कहा है। अधिनायक का पद बहुत बड़ी जिम्मेदारी वाला स्थान है क्योंकि उसकी क्षमता पर ही निर्भर करता है कि सामूहिक उपासना में शक्ति का अवतरण किस तीव्रता से होगा। जैसे ज्योति से शक्ति-तरंगों का प्रसार होता है वैसे ही अधिनायक से भी। वह भी शक्ति-प्रसारण का एक केन्द्र बन जाता है। भाग लेने वाले साधक जैसे ज्योति से सम्बद्ध हो जाते हैं वैसे ही अधिनायक से भी। कभी-कभी अचानक ही ज्योति के बुझ जाने से साधकों को जैसा झटका लगता है वैसा ही झटका जाप से अधिनायक के अचानक उठ जाने से साधकों ने अनुभव किया है। अत: अधिनायक के अन्दर कुछ बातों का होना आवश्यक हो जाता है। वे इस प्रकार हैं -

1. उसकी अधिकाधिक भजन में प्रवृत्ति, हमारी साधना और उपासना के सभी अंगों और अंशों के प्रति ठीक समझ, अनन्यता व गहरी निष्ठा।
2. उसकी महाशक्ति से जुड़े होने की क्षमता तथा लगन की तीव्रता जो उसके जीवन की नियमितता में लक्षित होती है।
3. भावों का संयम - अधिनायक सामूहिक उपासना का संचालक होता है। इस नाते उपासना के नियम तथा विधिपूर्वक संचालन की जिम्मेदारी पूरी तरह उसकी होती है।

वास्तव में अधिनायक का पद सम्मान का कम और जिम्मेदारी का बहुत अधिक है, क्योंकि अधिनायक को उपस्थित सभी साधकों

की उपासना के प्रति जिम्मेदार तथा जागरूक रहना होता है।

अधिनायक को अपने को सभी साधक बन्धुओं का सेवक समझना है। वास्तव में वह अपने काम के द्वारा दूसरों की सेवा ही करता है। किसी भी साधक बन्धु के प्रति द्वेष आदि कलुषित भावना उसे अपने पवित्र कार्य के अयोग्य कर देती है। अधिनायक ऐसा हो जो खुशी-खुशी सभी साधक बन्धुओं के प्रति प्रेम-भाव रखता हो।

12
प्रबोधन

उपासना में बैठते ही मन को उद्‌बोधन देना चाहिए कि इतनी देर तक हमें लग करके साधना करनी है। बाकी बातों का निर्णय बाद में करेंगे। यदि कोई विशेष बात जोर दे रही हो, तो उसका पहले ही फैसला कर डालना चाहिए। जिन व्यक्तियों ने निश्चय न करने का स्वभाव बना लिया है उनको विशेष कठिनाई होती है। वही बात दिमाग में चक्कर लगाया करती है। अत: यह स्वभाव बना लेना चाहिए कि एक बार सारी बातों को सोचकर निश्चय किया जाए और फिर उनको सोचने से इन्कार कर दिया जाए। यदि निश्चय के लिए समय उपयुक्त न हो तो उपयुक्त समय तक विचार ही न करना चाहिए अन्यथा व्यर्थ में ही शक्ति का अपव्यय होता है। यह स्वभाव साधना में तथा सांसारिक कृत्यों में भी सहायक होता है। मन को प्रबोधन देना (समझाना) चाहिए, उसको दबाना या उससे झगड़ा नहीं करना है।

13
धारणा

प्रबोधन के उपरान्त समुचित धारणा (right orientation) प्राथमिक अवस्था में बहुत सहायक है। यह धारणा मन्त्र के प्रभाव के लिए उचित अवस्था ले आती है। धारणा वह स्थिति है जिसमें हमारा मन, हृदय तथा सम्पूर्ण अन्तर्जगत ऐसी भावपूर्ण अवस्था में हो जाता है कि हम पूर्ण एकाग्रता से भाव-विभोर हो सहज ही शक्ति का निरन्तर अवतरण अनुभव कर सकते हैं। किसी भावपूर्ण भजन के द्वारा, किसी प्रार्थना के द्वारा अथवा भावपूर्ण नमस्कार के द्वारा यह कार्य सिद्ध हो जाता है। पूज्य स्वामी जी इसके लिए प्राय: **'हम बालक तुम माय हमारी'**, **'मैया बरस-बरस रस वारी'** अथवा **'पितु मातु सहायक स्वामी सखा'** नाम के भजन गाया करते थे। समुचित धारणा उत्पन्न करने में एक और प्रार्थना जो पूज्य स्वामी जी की डायरी से प्राप्त हुई है इस प्रकार है :-

उतरो माँ हे बन अवतार। उतरो जीवन में साकार॥

नूतन जग अभिनन्दित हो, प्राणों में तू स्पन्दित हो।
गौरवमय महिमान्वित हो, रोम-रोम आनन्दित हो॥

तव चरणों में अभिनन्दन, स्वीकृत होवे प्रेमागार।
जीवन नाव लगाने पार, बन आवो तुम खेवनहार॥

उतरो जीवन में साकार। उतरो माँ हे बन अवतार॥

भजन अथवा प्रार्थना कोई भी क्यों न हो भाव ऐसे होने चाहिएँ जिसमें अपने आप को **प्रभु के बहुत ही निकट समझा गया हो; जिसमें महाशक्ति के अवतरण की प्रार्थना की गई हो तथा जिसमें**

प्रभु के सन्मुख समर्पण की भावना व्यक्त की गई हो। इस समय अन्य भजनादि नहीं गाना चाहिए। उन्हें तो हम साधना के उपरान्त गा सकते हैं।

इसके अतिरिक्त भगवान को, उसकी महाशक्ति को अपने समीपातिसमीप समझने से, उसकी कृपामयी शक्तिधाराओं को अपने ऊपर उतरती हुई प्रतीत करने से, अपने को माँ की गोदी में बैठा हुआ प्रतीत करने से भी सहायता मिलती है।

साधना के लिए समय के प्रति सावधान रहना बहुत जरूरी है याद रखिए कि उपासना के प्रारम्भ का समय आवाहन के प्रारम्भ का समय है और आवाहन निश्चित समय पर ही होना चाहिए। किसी भी मूल्य पर आवाहन का समय पर होना नहीं टलना चाहिए। इस कार्य की समानरूप से सभी की जिम्मेदारी है – विशेषकर अधिनायक की तो है ही।

हमारे साधना शिविरों के प्रारम्भ में इस निमित्त पूज्य स्वामी जी द्वारा लिखी निम्नलिखित प्रार्थना कही जाती थी :–

माँ ! महाशक्ते !
तू अपार है, तेरी कृपा अपार है !
मंगलमयी सौम्य स्वरूपिणी माँ !

इस साधन सम्मिलन रूपी महान् यज्ञ में हम अपने आपे को पूरी तरह होम कर सकें – अपनापन पूरी तरह मिटा सकें ! हममें समूचे जीवन को तेरे विशाल यज्ञ के रूप में देखने की बुद्धि जग जाए !

हमारा जीवन पूर्ण रूपेण, सत्य तथा सेवामय हो जाए ! प्रेम की शीतल, उज्ज्वल ज्योति बना हुआ, तेरी सत्ता को अभिव्यक्त करता हुआ यह जीवन सर्वथा सभी के लिए हो जाए !

तू जग जा सच्ची भक्ति के रूप में ! तू जग जा पावन शक्ति

के रूप में ! तू जग जा निर्मल विवेक के रूप में ! और माँ ! तू उतर आ सबके भीतर दिव्य शान्ति, प्रेम, शक्ति और अपनी महती चेतना के रूप में ! रंग दे हम को अपने रंग में माँ ! हमें अपना कर ले, पूरी तरह से माता !

14
उपासना का क्रम

1. प्रबोधन
2. ज्योति प्रज्वलन
3. धारणा
4. आवाहन
5. नमस्कार सप्तक
6. जाप
7. भजन
8. संकीर्तन
9. विनय-प्रार्थना के पद
10. आरती (यदि आयोजन हो)
11. विश्व की मंगल-कामना के पद
12. शान्ति मन्त्र
13. प्रसाद (यदि आयोजित हो)
14. विसर्जन

15
उपासना का प्रारम्भ
(सभी कार्य ढंग से और ऊँची भावना से करने चाहिए)

प्रबोधन

प्रबोधन द्वारा मन को समझाकर शान्त और सौम्य बनाकर उपासना के लिए तैयार करना चाहिए।

ज्योति प्रज्वलन

राम नाम का उच्चारण करते हुए अधिनायक को समय पर ज्योति जगानी चाहिए। सभी साधक ज्योति को भगवान का रूप समझते हुए नमस्कार करें।

धारणा

एक-दो भजन या प्रार्थना समुचित धारणा उत्पन्न करने के लिए सभी साधक कहें। अधिनायक चाहे तो स्वयं कह सकता है। समय का अभाव हो, वातावरण पहले से ही राम नाम से अभिमन्त्रित हो, शक्ति का वेग अधिक हो अथवा ऐसा अन्य कोई कारण हो तो इस समय भजन प्रार्थना नहीं भी कही जा सकती है। मौन भावना द्वारा एक क्षण में ही साधक वैसी स्थिति बना सकते हैं। आवश्यकता है समुचित समझ व भावना होने की।

आवाहन

आवाहन का अर्थ है आमन्त्रित करना - बुलाना। इसके लिए हमारी उपासना में छोटा सा मन्त्र है जिसे आवाहन की प्रार्थना भी कह सकते

हैं उस मन्त्र को मन्द स्वर में अधिनायक को (केवल अधिनायक को) कहना चाहिए। अन्य सभी मन ही मन कहें कहते समय यह भावना रखनी चाहिए कि **माँ, महाशक्ति** ज्योति में तथा स्वयं साधक में अवतरित हो रही हैं

आवाहन मन्त्र

आवाहन का मन्त्र इस प्रकार है :-

परमात्मदेव श्री राम !

तू परम शुद्ध, बुद्ध, नित्य सर्वशक्तिमान,
सच्चिदानन्द-स्वरूप, ज्यातिर्मय, एकमेव,
अद्वितीय, परमेश्वर है।
तू परम पुरुष, दयालु, देवाधिदेव है।

तुझे बार-बार नमस्कार हो !
बार-बार नमस्कार हो ! !
बार-बार नमस्कार हो ! ! !

आवाहन, रटे रटाए पाठ की तरह यन्त्रवत् नहीं कहा जाना चाहिए। ऐसा न होना चाहिए कि आवाहन कहते समय मन कहीं और भटक रहा हो। आवाहन को यदि अधिक प्रबल बनाना है, अधिक शक्तिपूर्ण बनाना है तो उसके भावों के प्रति सजग रहना चाहिए। उसके शब्दों का अर्थ और उससे प्रकट होने वाले भावों का समुचित ज्ञान होना चाहिए। आरम्भ में भावपूर्ण आवाहन करना कठिन है। किन्तु यदि वैसा करने के लिए सजग रहा जाए जो शीघ्र ही शक्ति का अवतरण होने लगता है। शक्ति का अवतरण आवाहन के भाव और तीव्रता पर बहुत कुछ निर्भर करता है।

नमस्कार सप्तक

ज्योति में आमन्त्रित प्रभु को नमस्कार करने के लिए निम्नलिखित

प्रार्थना है। सभी साधक, एक साथ, अधिनायक के सुर में सुर मिलाकर कहें। सामान्य स्वर में गाना उचित है। आवाहन की भाँति इसको भी अर्थ समझते हुए, भावपूर्ण ढंग से गाना चाहिए।

करते हैं हम वन्दना, नत शिर बारम्बार।
तुझे देव परमात्मन्, मंगल शिव शुभकार।

अंजलि पर मस्तक किए, विनय भक्ति के साथ।
नमस्कार मेरा तुझे, होवे जग के नाथ।

दोनों कर को जोड़कर, मस्तक घुटने टेक।
तुझको हो प्रणाम मम, शत् शत् कोटि अनेक।

पाप हरण, मंगल करण, चरण शरण का ध्यान।
धार करूँ प्रणाम मैं, तुझको शक्ति-निधान।

भक्ति भाव शुभ भावना, मन में भर भरपूर।
श्रद्धा से तुझको नमूँ, मेरे राम हजूर।

ज्योतिर्मय जगदीश हे, तेजोमय अपार।
परम-पुरुष पावन-परम, तुझको हो नमस्कार।

सत्य ज्ञान आनन्दमय, परमधाम श्रीराम।
पुलकित हो मेरा तुझे, होवे बहु प्रणाम।

नमस्कार सप्तक समाप्त होने पर केवल अधिनायक इस भावना से **राम राम**, का कई बार उच्चारण करे कि महाशक्ति सारे वातावरण में अवतरित हो रही है। इसके बाद मन ही मन 'राम' 'राम' का जाप आरम्भ कर देना चाहिए।

16
जाप और माला

जाप

हमारी उपासना में जाप प्राय: 40 मिनट तक चलता है। जाप में राम का, केवल **'राम'** नाम का मानसिक जाप किया जाता है।

यह जाप मौन भाव से, शरीर को ढ़ीला छोड़कर करना चाहिए, जिह्वा तथा होठ न हिलें। जो जाप ऊँचे बोलकर किया जाता है उसमें स्थूल क्रिया ही मुख्य रहती है और स्थूल स्तर में ही उसका मुख्य प्रभाव होता है। सूक्ष्म क्रिया गौण (मन्द) हो जाती है तथा चित्त की शक्ति का प्रवाह मन्त्र के सूक्ष्म स्पन्दन में भली भाँति प्रवेश ही नहीं कर पाता, बाह्य उच्चारण तथा उसके श्रवण में ही बिखर जाता है। इसी कारण बोलकर किए जाने वाले जाप में मन्त्र द्वारा होने वाली सूक्ष्म क्रिया बहुत धीमी होती है। दूसरे महाशक्ति के अवतरण के लिए जितनी शान्ति और शिथिलता की जरूरत होती है वह नहीं हो पाती। अत: मन्त्र की सूक्ष्म क्रिया वेग से नहीं होती।

जाप में श्वास-प्रश्वास को बदलने की चेष्टा नहीं करनी, **राम** नाम के साथ जोड़ने का भी प्रयत्न नहीं करना। **नाम** की धारा को स्वत: चलने देना ही ठीक है। वैसी आदत पड़ जाने पर श्वास पर तनिक सी दृष्टि रखनी चाहिए। ऐसा करने से जल्दी ही श्वास-प्रश्वास के ध्यान का अतिक्रमण हो जाता है। साधक नाम में खो जाता है।

राम के जाप के साथ अपने भीतर तथा बाहर **राम** नाम के स्पन्दन अनुभव करने चाहिएँ। यह अनुभव करना चाहिए कि रोम-रोम से **राम** प्रतिध्वनित हो रहा है - स्पन्दित हो रहा है। हमारे ऊपर **राम-राम**

की वर्षा हो रही है। हमारे रोम-रोम में **राम** प्रवेश कर रहा है। हम भीतर तथा बाहर **राममय** हैं। कालान्तर में जब मन्त्र की क्रिया अधिक प्रबल हो जाती है, एक ऐसी अवस्था आ जाती है कि साधक को ऐसे अनुभव सहज हो जाते हैं; किसी दूसरे काम में लगे हुए भी साधक के अन्दर स्मरण तथा स्पन्दन बना रहता है - मानों मन्त्र का अनवरत-प्रवाह स्वयं चल रहा हो। साधक स्वयं जाप करता सा प्रतीत नहीं करता किन्तु **माँ,** महाशक्ति की क्रिया उस पर हर समय वेग से होती रहती है।

उपासना के प्रारम्भ के दिनों में, मन में उधेड़ बुन बनी रहती है। जाप का क्रम चलने नहीं पाता। बार-बार जोड़ते रहने पर भी टूट जाता है। साधन की प्रथमावस्था में ऐसा होना स्वाभाविक है। मन की उधेड़ बुन को रोका जाता है तो मन और अधिक चंचल हो जाता है। अत: जो अवांछित विचार आते हैं उनकी उपेक्षा ही करनी चाहिए, उन्हें महत्व न देना चाहिए, उनसे झगड़ना न चाहिए। विश्वास रखना चाहिए कि वे स्वत: क्षीण हो जाएँगे। उनसे डरना भी नहीं चाहिए, अन्यथा वे दब जाते हैं या हमें प्रभावित करने लगते हैं।

अपनी सारी शक्ति, अपना सारा ध्यान मन्त्र के जाप में ही केन्द्रित करना चाहिए। भागे हुए मन को बार-बार उस ओर लगाना चाहिए। बाकी सब स्वयं हो जाता है।

माला

मन की चंचलता का कारण है प्राण। यदि प्राण के एक अंश को काम में लगा दिया जाए तो उसकी उतनी शक्ति मानसिक क्षेत्र में उत्पात नहीं मचा पाती। माला के उपयोग से प्राण की शक्ति को ऐसा काम मिल जाता है तथा यह काम ऐसा है जिसमें ध्यान बँटता नहीं। अत: प्रारम्भिक अवस्थाओं में माला प्राय: अनिवार्य है। माला से जाप का क्रम टूटने नहीं पाता, भले ही मन संकल्पों-विकल्पों में डूबा हो। ऐसा

जाप भी गुणकारी होता है क्योंकि सूक्ष्म स्तरों में तो माला द्वारा जाप होने के कारण क्रिया होती ही रहती है और उसका प्रभाव पड़ता है। यही क्रिया कालान्तर में जब प्रबल हो जाती है तो संकल्प विकल्प खो जाती हैं।

परिच्छेद

माला के उपयोग से एक लाभ और भी है। ऐसा करने से प्राण को माला फेरने के ध्यान में लगा देने के कारण माला फेरने से एक विशेष प्रकार की गति उत्पन्न हो जाती है। यह गति, मन्त्र से उत्पन्न हुई सूक्ष्म क्रिया के साथ स्म्बन्ध जोड़ लेती है। अतः प्राण की यह क्रिया मन्त्र की सूक्ष्म क्रिया के साथ ठीक उसी प्रकार सम्बन्ध जोड़ लेती है जैसे मन्त्राक्षरों से उत्पन्न मन्त्र की क्रिया। इस प्रकार माला से किया जाप एक ओर संकल्प-विकल्पों को बिना प्रयास शान्त कर देता है तथा दूसरी ओर मन्त्र की शक्ति को और अधिक प्रबल कर देता है। यह विश्वास रखना चाहिए कि संकल्प-विकल्प होने पर भी भागवती-शक्ति अपनी प्रक्रिया जारी रखती है।

उपासना काल के अतिरिक्त अन्य समय में भी नाम तैल की धारावत चलना चाहिए। जेब में माला रखना प्रबोधक अर्थात् whip का काम करता है। प्रारम्भिक अवस्था में स्वामी जी अपनी जेब में माला रखा करते थे और इसे whip कहा करते थे। नाम के निरन्तर अभ्यास से नाम सोते, जगते, हर समय, यहाँ तक कि बात करते समय भी मन में चलता रहता है।

17
उपासना की पूर्ति

जाप की समाप्ति

समय पूरा होने पर अधिनायक को नामोच्चारण से जाप की पूर्ति करनी चाहिए। अन्य सभी मौन रहेंगे। पूज्य स्वामी जी नामोच्चारण के उपरान्त प्राय: यह श्लोक गाते थे –

सर्व मगलं मांगल्ये, शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बिके गौरि, नारायणी नमोऽस्तुते।

अथवा

सब मंगल में मंगल रूपे, शिवस्वरूपे।
सब अर्थों की साधक हो तुम, जननी रूपे।
त्रिनेत्रवती हो, शरणदायनी।
हे माँ गौरी, हे नारायणी।
तव चरणन में नत यह माथा।
बार-बार अभिनत यह माथा।

अपनी आन्तरिक प्रेरणा के अनुसार अधिनायक तथा अन्य साधकों को विनय के पद, प्रार्थना के पद, आत्म-समर्पण तथा माँग के पद गाने चाहिए। विनय के पद **'पत्तियाँ और फूल'** नामक पुस्तिका में, तथा प्रार्थना के भाव **'भावों की झलक''** (अध्याय 26) में मिल सकते हैं जहाँ तक हो, सन्तों तथा भक्तों द्वारा रचित पदों का गाना ही श्रेयस्कर होगा। स्वामी जी सूर, तुलसी, मीरा, नानक, दादू, कबीर इत्यादि के पदों पर बल देते थे। इस समय की गई प्रार्थना विशेष प्रभाव रखती है। पद अकेले या सामूहिक गाए जा सकते हैं

भजन-संकीर्तन

भजन-संकीर्तन हमारी उपासना का आवश्यक अंग है। अधिनायक किसी को भी भजन गाने अथवा संकीर्तन के लिए कह सकता है। अत: कुछ उपयुक्त पद स्मरण रहना चाहिए। पुकारे जाने पर ही बोलना ठीक रहता है। अन्यथा गड़बड़ी हो जाती है। समय की सीमा का उल्लंघन तो हो ही जाता है। पहले भजन बाद में संकीर्तन यह क्रम ठीक होता है। गायन सामूहिक या व्यक्तिगत, समयानुसार होना चाहिए।

परिच्छेद

कभी भी और किसी प्रकार से भी भजन-संकीर्तन कहने वाले के साथ सुर नहीं मिलाना चाहिए। उसके बाद ही दोहराना चाहिए। भजन कहने वाला यदि अति भाव-विभोर होकर भजन कह रहा हो तो उसे अकेले ही कहने देना चाहिए, दोहराना नहीं चाहिए।

जो भजन भली-भाँति याद हों उन्हें ही गाना चाहिए, कापी आदि से देखकर पढ़कर गाए जाने वाले भजन स्वत: भीतर से स्फुटित न होने के कारण न तो भावों को जागृत करने की क्षमता रखते हैं और न ही शक्ति के प्रसारण की।

भजनादि हमारी साधना के दृष्टिकोण के अनुकूल ही होने चाहिएँ। गाने के लिए गाना नहीं होना चाहिए। गाने में भाव की प्रधानता ही मुख्य रहनी चाहिए। स्वर तथा ताल उसके वाहक हों, वह प्रधान होकर भाव के स्थान पर अधिकार न कर लें इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है।

भजन-संकीर्तन के समय कभी-कभी साधक को ऐसा होने लगता है कि बोलने योग्य नहीं रह जाता। मानों होठों पर ताला पड़ा हो या रोना आता हो। शान्त रहने की प्रेरणा होती है। ऐसी अवस्था में उस प्रेरणा को ही मानना चाहिए और चुप रहना चाहिए। उस महाशक्ति के आगे झुक जाना और उसके आदेश को स्वीकार करना ही उचित

होता है। भीतर काम करने वाली **माँ** की प्रेरणा ही वास्तविक निर्णायक है।

भजन–संकीर्तन के अन्त में कुछ क्षणों के लिए मौन रहना चाहिए। इस मौन द्वारा, उस वातावरण के प्रभाव को, जिसका जाप–भजनादि से निर्माण हुआ है, हम भली प्रकार ग्रहण कर सकते हैं। इस समय अपने को शिथिल कर देना चाहिए।

भजन–संकीर्तन कितना हो यह समय की सीमा पर निर्भर करता है।

इस विषय में और अधिक जानकारी आगे **'भजन–संकीर्तन'** के अध्याय 21 में दी गई है।

आरती

यदि आरती का आयोजन हो तो भजन–संकीर्तन के बाद आरती होनी चाहिए। आरती की थाली को भी ज्योति की थाली की भाँति पुष्पादि से सजाते हैं इसके निमित्त प्राय: पाँच ज्योति जलाई जाती हैं आरती के उपरान्त 'गुरु वन्दना' के लिए ठीक वातावरण बन जाता है। उपासना के प्रारम्भ में भी गुरु वन्दना की जा सकती है। हमारी आरतियाँ भी विशेष भाव लिए होती हैं, इनका संग्रह **'पत्तियाँ और फूल'** में दिया गया है। निम्नलिखित दो आरतियाँ यहाँ उसमें से उद्धृत हैं – पूज्य स्वामी जी द्वारा 'आरती' पर विशेष रूप से लिखे लेख में, जो आगे अध्याय 21 में दिया गया है, इस विषय पर अधिक जानकारी दी गई है।

आरती

(1)

जय सन्तों के परम सहायक, जय ऋषियों के धाम हरे।
जय देवों के देव दयामय, जय मुनियों के राम हरे।

जय जय मंगल धाम हरे, जय जय सुखमय राम हरे।
जय मम प्रियतम राम हरे, जय मम जीवन प्राण हरे।

जय मीरा के गिरधर नागर, सूरदास के श्याम हरे।
जय नरसी के सांवरिया, जय तुलसीदास के राम हरे।

(2)

जय हो ! जय हो ! माँ ! तेरी जय जय जय हो,

गगन मण्डल में धरनी-धर में माता।
कण कण में सबके, तेरी जय जय जय हो।

जीवनदा ! बलदा ! मंगलदा ! माता।
वरदा, शुभदा, माँ ! ज्योतिर्दा, तुम हो।

करुणा-कर हो, प्रीतिप्रदा माता।
मम जीवन-धन, मग दर्शक तुम हो।

शक्ति महा हो, कृपामयी माता !
वत्सलता से परिपूरण तुम हो।

आश्रित जन हैं, तेरी शरण, माता !
कृपा करो, हम को अपना तुम कर लो।

पूर्ति

अन्त में अधिनायक को मंगलकामना रूपी पदों, चौपाईयों, आदि के द्वारा कार्यक्रम की समाप्ति कर देनी चाहिए। पूज्य स्वामी जी प्रायः निम्निलिखित श्लोकों को कहा करते थे –

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।

उनके द्वारा गाये इस श्लोक का हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार है:-

जगती सुखी हो सर्वदा, नैरोग्य को पावें सभी।
अनुभूतियाँ मंगलमयी हों, न दुःखी होंवे कभी॥

तथा

न त्वहं कामये राज्यम्, न स्वर्गं न पुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानाम्, प्राणिनामार्ति नाशनम्।

अथवा

न करूँ कामना राज्य की, न स्वर्ग की, अपवर्ग की।
देव कामना हो दुःखी जनों के, क्लेश के उत्सर्ग की।

त्वदिष्टम् भवतु गोविन्द !
त्वदिष्टम् भवतु गोविन्द ! !
त्वदिष्टम् भवतु गोविन्द ! ! !

अथवा

तेरी इच्छा पूर्ण हो माँ !
सब बिषय में, सब समय में, सर्वथा परिपूर्ण हो, माँ ! तेरी...
तन में मेरे, मन में मेरे, बुद्धि में भी पूर्ण हो, माँ ! तेरी...
आत्मा में, बाह्य जग में, सर्वत्र, परिपूर्ण हो, माँ ! तेरी...
तेरी इच्छा पूर्ण हो माँ ! तेरी...

विसर्जन

ऊँ शान्तिः ! शान्तिः ! ! शान्तिः ! ! !

इस शान्ति मन्त्र द्वारा अधिनायक ज्योति में आमन्त्रित माँ महाशक्ति को विदा करता है। ज्योतिरूप भगवान को नमस्कार करके उपासना की समाप्ति होती है। विसर्जन हो जाता है।

सम्मिलित उपासना वाला स्थान एक मन्दिर बन जाता है। उस स्थान की पवित्रता को बनाए रखने की चेष्टा करनी चाहिए। कार्यक्रम समाप्त होते ही मन्दिर को खाली कर देना चाहिए। वहाँ ठहर कर इधर-उधर की बातचीत करना उचित नहीं।

सामान्य सामूहिक उपासना लगभग एक घण्टे में पूरी हो जानी चाहिए।

विशेषः मन्दिर में गुरुदेव के अतिरिक्त अन्य किसी को नमन, अभिवादन, चरण-स्पर्श आदि कदापि नहीं करना चाहिये।

18
व्यक्तिगत उपासना

व्यक्तिगत साधना में उपासना का क्रम वही रहता है जो सम्मिलित उपासना में। केवल वे कुछ नियम नहीं बर्ते जाते जो इकट्ठे बैठने के लिए पालन करने आवश्यक हो जाते हैं

समय अथवा रुचि हो तो आरम्भ में प्रार्थना करें, न हो तो न करें। ज्योति का जलाना भी अनिवार्य नहीं, अपनी सुविधा पर निर्भर करता है।

आरम्भ तथा पूर्ति के लिए भी किसी प्रकार का कोई बन्धन नहीं है। केवल मात्र **राम-राम** का उच्चारण करके ही बैठा जा सकता है तथा केवल नमस्कार करके ही उठा जा सकता है। ऐसे ही यदि प्रेरणा हो तो प्रार्थना, कीर्तन, मंगलकामना आदि जो भी चाहें करें समय, सुविधा तथा रुचि पर सभी कुछ निर्भर करता है। इसी प्रकार आरती के विषय में भी कोई बन्धन नहीं है।

हमारी उपासना से दूसरों को कम से कम परेशानी हो इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है।

19
जाप सम्बन्धी कुछ विशेष बातें

अपना प्रयत्न मन को काबू करने के लिए मत लगाइए। उस शक्ति को **माँ** के चरणों में युक्त होने में, उसका चिन्तन करने में लगाइए। मन स्वयं ही सिमटने लगेगा। यदि कोई सोचे के मन को वश में करने पर ही प्रभु पथ पर चला जाएगा तो कभी भगवान का रास्ता न मिल सकेगा। नाम-स्मरण में जितना मन लगे, लगाइए, और लगाइए। मन अपने आप ही रुकेगा। मन से लड़ाई लड़ना गलत तरीका है। प्रार्थना तथा **नाम** यही दो बातें उचित मालूम पड़ती हैं अन्यथा गड़बड़ में पड़ जाएँगे। विश्वास की पुट दीजिए। इस नाम ने अनेकों को शान्त किया है, विश्वास रखिए।

* * *

मन को घेरने के प्रयत्न से, संकल्पों और विकल्पों को दूर करने के प्रयत्न से, मन्त्र के स्पन्दन में शक्ति का प्रवाह और भी दुर्बल पड़ जाता है। हम को मन को शून्य नहीं करना है। हमें तो मन को मन्त्र के स्पन्दन से ओत-प्रोत कर देना है। अतः संकल्प-विकल्प को दूर करने का प्रयत्न इसको और भी दुर्बल कर देता है। वह उपाय यहाँ निष्फल ही नहीं बाधक भी होगा। इसलिए आने तथा जाने वाले संकल्पों-विकल्पों से लड़ाई न लड़नी होगी। इस उपासना में एकाग्रता को प्राप्त करने के लिए आने जाने वाले संकल्पों-विकल्पों की उपेक्षा करनी होगी, उनकी बिल्कुल परवाह न करनी होगी। उपेक्षा करने से, उनसे बिल्कुल न घबराने से यह समय पाकर स्वयं शान्त हो जाएँगे, इसमें सन्देह नहीं। ध्यान देने से यह झगड़ा सतत चलता रहेगा और परेशानी ही परेशानी हाथ लगेगी। स्पष्ट है कि स्थिरता स्वयं आने वाली

वस्तु है। किसी भी कारण से यह आने से रुक नहीं सकती। हमारी उत्सुकता तथा चिन्ता ही किसी हद तक बाधक हो सकती है। मन से झगड़ कर, उसको दबाकर, उस पर काबू नहीं पाया जा सकता है। मन को समझाया जा सकता है। नाम स्मरण में लगाया जा सकता है।

* * *

भजन करने में मन इधर-उधर उड़ता है। इसमें परेशानी की कोई बात नहीं। साधना के क्रम को ठीक न समझने से ही ऐसा होता है। यदि साधना के प्रति ठीक समझ हो तो घबराहट नहीं होती। जब जगी हुई शक्ति हृदय से नीचे के केन्द्रों में काम करती है तो मन चंचल हो उठता है। ऐसे लगता है कि कुछ हो ही नहीं रहा। बेकार में समय खराब हो रहा है। परन्तु ऐसा नहीं होता। वह शक्ति जो हमारे भीतर क्रिया करती है और सभी अनुभूतियों का कारण है, जो हमें निर्मल करती जाती है वह तो अपना काम कर ही रही है। वह साक्षात् भगवान ही है जिसने हमारी नौका का जिम्मा अपने ऊपर ले रखा है। जो हमारे भीतर होता है वह हमारे किए से नहीं, उसी के किए से होता है।

अत: घबराहट की आवश्यकता नहीं; धैर्य से अपना नियम निभाते जाएँ। विश्वास रखें कि यह मन का उचाट होना भी उसी की लीला है और उसी की कृपा का फल है। थोड़े ही दिनों में शक्ति ऊपर के केन्द्रों में काम करने लगेगी और तसल्ली होने लगेगी। आखिर सफाई की क्रिया की तो सभी जगह आवश्यकता होती है। यदि शरीर रूपी घर के निचले कमरे साफ न किए जाएँ तो पूरा घर साफ भी नहीं हो सकता।

* * *

जब भी शक्ति का दबाव हमारे शरीर के लिए अत्यधिक होता है तब भी मन नहीं लगता। शाम के समय स्थान का भी प्रभाव होता है और इकट्ठे बैठने का भी। इसके लिए कुछ तो दिन में किया आराम सहायक हो सकता है; दूसरा, ज्योति से जरा दूर बैठने से; तीसरे, बैठने

में गर्दन को सिर को जरा पीछे को कर लेने से जिससे शक्ति के अवतरण में कोई रुकावट न हो। रात के भीगे आँवले से आँखें धोना और उसी जल से सिर धोना भी हितकर होता है। गर्मी भी कारण है ही। कष्ट अधिक होने पर उठकर टहलना ही अच्छा है। टहलते हुए जाप किया जा सकता है।

* * *

जैसे-जैसे साधन चलता है, व्यक्ति के जीवन में और रुचियों में स्वत: परिवर्तन होता चला जाता है। हमारा मुख्य आधार **'राम'** नाम है, उसी के आश्रय हम चलते हैं। प्रभु कृपा पर निर्भर रहते हैं। उसकी शक्ति हमारे में अवतरित होती हुई जीवन को बदल देती है। भीतर तथा बाहर की समस्याओं को सुलझाकर निश्चिंत कर देती है। प्रभु का भान होने लगता है - भीतर तथा बाहर। **'राम'** का जाप आरम्भ कर दीजिए। प्रात: जल्दी ही बैठिए। स्नान का कोई बन्धन नहीं है। आवश्यकता हो तो शौचादि से भली प्रकार से निवृत्त होकर बैठिए। माला से जाप करिए। आरम्भ में जीभ, होठ थोड़े हिलते रहें तो कोई अनुचित नहीं नाम की ध्वनि में ही मन लगाएँ; आवश्यकता प्रतीत हो अथवा सहज में कोई रूप सामने आए तो उसमें मन लगाएँ, न आए तो किसी रूप को लाने की चेष्टा न करें। बैठने से पूर्व प्रभु को नमस्कार करिए, झुक कर। शरीर को ढीला कर रखिए। 25 मिनट से आरम्भ करके समय बढ़ाते जाइए।

दिन में काम काज में मन में स्मरण करने की चेष्टा करें, सायं समय प्रात: की तरह बैठिए। सोते समय जाप करते सो जाइए।

* * *

भीतर हमेशा एक सी अवस्था तो बहुत आगे चलकर आती है। शक्ति की गति के अनुसार कभी आनन्द होता है, कभी शान्ति होती है और कभी सुनसान होता है। सभी अवस्थाएँ उस महामंगलमयी **माँ** के किए से होती हैं। यही ध्रुव सत्य है। किसी भी अवस्था से परेशान

न होना चाहिए। **माँ** से ही स्वीकार करनी चाहिएँ सभी अवस्थाएँ। ऐसा करने से हम उसके और अधिक निकट हो जाते हैं और उसकी कृपा अधिक प्राप्त होती है।

* * *

जैसे-जैसे साधक आगे बढ़ता है, उसकी साधन-शैली में स्वत: कई प्रकार के सूक्ष्म परिवर्तन होने स्वाभाविक ही हैं। अपने को ऐसे परिवर्तनों के लिए केवल तैयार रखना ही आवश्यक है।

20
भजन संकीर्तन

आन्तरिक साधना के पक्ष में चलते-चलते कई प्रकार की अनुभूतियाँ अनेक प्रकार के भावों को जागृत कर देती हैं कभी तो समर्पण, कभी विनय, कभी मातृ भावना के भाव में आर्त्त हुआ अणु-अणु उसके आगे झुकने से अघाता नहीं, कभी रोम-रोम, कभी विश्व का कण-कण **'राम'** नाम के निनाद से गूँजता प्रतीत होता है। कभी विरह की व्यथा व्याकुल कर देती है। ऐसे अवसरों पर भाव के उद्वेग की शान्ति हो पाती है उसे प्रकट करने से। उसके लिए भाषा चाहिए जो भाव के बिल्कुल अनुकूल हो और भीतर की लय से पूरा मेल खाती हो। फिर सहज रूप से भाव अपने लिए भाषा और लय का निर्माण कर लेते हैं, अनजाने ही कविता फूट निकलती है। बिना समझे ही सुरताल प्रकट हो जाते हैं भक्तों के ऐसे उद्‌गार ही भजन-संकीर्तन बन जाते हैं।

यह सामान्य कविता के पद नहीं होते। यह तो शक्ति सम्पन्न मन्त्र हो जाते हैं जिनमें वे अनुभूतियाँ निहित रहती हैं जिनके भावावेग से वे प्रकट होते हैं। इन्हें गाने से, इनका वेग गाने वालों को भी कुछ अंशों में वैसी ही अनुभूति करा देता है; सामान्य स्तर से उठा देता है। किसी रूप में प्रभु की सत्ता प्रतीत होने लगती है।

उपयोगिता

हमारी उपासना में भजन-संकीर्तन अपना विशेष स्थान रखते हैं भावों को जागृत करने के लिए, धारणा को बनाने एवं स्थिर रखने के लिए तथा भगवान की समीपता को प्रतीत करने के लिए यह विशेष उपयोगी हो सकते हैं। एक से अधिक लोगों के भाग लेने से उनकी

भावना की कोटि तथा प्रबलता के अनुसार भाव-तरंग प्रबल तथा ऊँची हो जाती हैं और उसका उत्तर भी उसी प्रकार का होता है। सभी उसी में रंग जाते हैं, इसी प्रकार से वातावरण में परिवर्तन होता है।

जाप से सम्बन्ध

जप-ध्यान आभ्यान्तरिक साधन है। वह उपासना की जान है, उससे तो शक्ति का प्रवाह प्रेरित होता है। भजन-संकीर्तन प्रेरित होते हुए प्रवाह को प्रबल कर सकता है, उसे फैला सकता है। इसका प्रभाव शक्ति की क्रिया पर भी होता है। इनसे भावों की जागृति होती है। जगा हुआ भाव शक्ति के वेग को बढ़ाता है। जब भीतर जागृति मन्द हो रही हो तो भीतर की रोकों को दूर कर सकता है। यह याद रखना है कि जप-ध्यान का अपना मुख्य स्थान है। कीर्तन उसका स्थान नहीं ले सकता। किन्तु कीर्तन का भी अपना स्थान है। अत: जप-ध्यान के साथ-साथ कुछ मिनट भजन-संकीर्तन के लिए भी निकालने चाहिए।

भजनादि कैसे हों?

भजन - भजनादि गाते समय भगवान की उपस्थिति को न भूलना चाहिए। भाव होना चाहिए कि भगवान हमारे सन्मुख हैं जैसे हम अपने किसी आदरणीय को बुलाकर व्यवहार नहीं करते, वैसा भजनों में भी न करना चाहिए। स्तुति, प्रार्थना, विनय अथवा समर्पण के भजन ऐसे अवसर पर उपयुक्त होते हैं; लीला का वर्णन भी उचित है। कहीं पर प्रभु से युक्त होने के लिए अपने से माँग भी उचित हो सकती है जैसे **'ऐ दिल खुशी से हो जा भगवान के हवाले'।**

कीर्तन - हमारी उपासना में कीर्तन केवल राम नाम का ही ठीक रहता है क्योंकि इस एक ही क्रिया में जप और कीर्तन दोनों हो जाते हैं। वह कीर्तन भी अपेक्षित है जिसमें ऐसी प्रार्थना निहित हो जिससे गहरे और उच्चतम भाव जागृत हो सकें। यह भाव उच्च स्तरों में एक

प्रार्थना प्रसारित करने की सामर्थ्य रखते हैं जहाँ से उत्तर आता है जो हमें साधन पथ पर निश्चित ही आगे ले जाने में सहायक होता है। यदि हमें नाम गाना ही है तो क्यों न वही नाम गाएँ जो हमने पहले से स्वीकार किया है, जो हमारे अन्दर रमा हुआ है और जो हमारा जगा हुआ मन्त्र है।

नियम है कि हमारे भजन-संकीर्तन हमारी साधना के दृष्टिकोण के अनुकूल ही होने चाहिए। जैसी हमारी भावना हो वैसे ही भजन गाए जायें। सच्चाई का नियम भजनों में भी लागू होता है। वह भजन जिनसे हमारा मतलब नहीं वह न गाए जायें; गाने के लिए गाना न होना चाहिए। वही हमारे मुख से निकलना चाहिए जिसे हमारी अन्तरात्मा, मन और बुद्धि स्वीकार करते हैं। भजन तो हमारे भावों का समुचित उदगार मात्र होने चाहिए।

हमारी साधना से मेल खाते हुए भजन-संकीर्तन हमारे भजन-संग्रह **'पत्तियाँ और फूल'** में संकलित किए गए हैं।

किस प्रकार गाए जाएँ?

भजन-संकीर्तन गाने में भाव की प्रधानता ही मुख्य रहनी चाहिए। स्वर तथा ताल उसके वाहक हों, वह प्रधान होकर भाव के स्थान पर अधिकार न कर लें इस बात का ध्यान रखना चाहिए। संकीर्तन की उपयोगिता उससे होने वाले प्रभाव से ही आँकी जाती है। जितनी शान्ति तथा समता को हम भजन-कीर्तन में स्थापित करने की चेष्टा करते हैं उतनी ही वह स्वाभाविक ही भीतर भी प्रकट होने लगती है। बाजे, तबले की आवाज भी अखरने लग जाती है। कीर्तन और जप-ध्यान में अन्तर कम हो जाता है। भीतर प्रायः एक सी अवस्था हो जाती है। ऐसे भजनादि में बैठने से स्वतः ही एकाग्रता होती है और चित्त शान्त होता है। एक उच्च कोटि का ऊपर उठा देने वाला वातावरण बन जाता है।

ऊँची देव-शक्तियाँ भी अपनी शक्ति प्रसाद रूप में साधक मण्डल पर बरसा देती हैं महाशक्ति की कृपा का प्रवाह भी नहला देता है पुकारने वालों को। तन्मय होकर भावना से गाया हुआ एक पद ही वातावरण को बदल सकता है, शक्ति के प्रवाह को तीव्र कर सकता है।

साधना की प्रारम्भिक अवस्थाओं में ऊँचे-ऊँचे चिल्लाना, ताली पीटना, सिर आदि हिलाना खूब अच्छा लगता है। आवेश सा भी हो आता है। लोग अपना स्थान छोड़कर नाचने तक लग जाते हैं। बाजे तबले का जोर का शब्द अच्छा लगता है और उसकी आवश्यकता प्रतीत होती है। यह तभी होता है जब शक्ति की गति प्रधानरूप से नीचे स्थित प्राणमय कोष में होती है। जैसे-जैसे साधक भीतर शान्ति तथा समता का आस्वादन करता चला जाता है, शक्ति का वेग ऊँचे केन्द्रों को प्रभावित करने लगता है। प्राण में शक्ति का वेग समाप्त हो जाता है। भीतर की शान्ति तथा समता वाणी के द्वारा प्रकट होने लगती है। बाजों की आवाज भी अखरने लगती है।

भीतर की अवस्था बदलने पर भजन-कीर्तन में स्वत: परिवर्तन होता ही है तथा कीर्तन के रूप में बदलने पर भीतर भी परिवर्तन होता है।

इन्हें भावपूर्ण एवं प्रभावशाली बनाने के लिए यह आवश्यक है कि वे हृदय की गहराइयों से निकलें - आत्मा के स्तर को छूते हुए। यह तभी सम्भव है जबकि गाए जाने वाले भजनादि कहने वाले को भली-भाँति याद हों तथा अर्थों का उसे पूरी तरह ज्ञान हो। पुस्तकादि से पढ़कर अथवा बिना अर्थों को समझे गाए जाने वाले भजन चेतना के ऊँचे स्तरों को स्पर्श नहीं कर पाते। अत: ऐसे गाए जाने वाले भजनादि उपासना में सहायक नहीं होते। वह तो गाने के लिए गाना हुआ।

कुछ अन्य बातें

जिन साधकों को भीतर शुष्क सा प्रतीत होता है, जिनको अभी

प्रतीतियाँ नहीं होने लगी हैं उनके लिए तो भजनादि अनिवार्य ही हैं। उन्हें तो नियमित रूप से थोड़ा समय इसके लिए देना ही चाहिए। इससे बहुत सहायता मिलेगी। पहले-पहले भजन-कीर्तन में रस नहीं आएगा परन्तु धैर्य से करते चले जाने से रस आने लगेगा। प्रभु की समीपता का भान होने लगेगा।

कीर्तन मनोविनोद के लिए भी किया जाता है और आनन्द के लिए भी। उत्सवरूप भी लोग कीर्तन करते हैं कोई विरले ही इसे साधना-उपासना समझकर करते हैं। यदि हमारी उपासना में कहे भजन-संकीर्तन हमारी साधना के दृष्टिकोण के अनुकूल न हुए अथवा उनके कहने का ढंग हमारी विचारधारा से मेल खाता न हुआ तो वे हमें आनन्द देकर हमारा मनोविनोद ही कर पाएँगे। उनमें न तो शक्ति के प्रसारण की क्षमता होगी और न ही अन्तर जगत् में शान्ति और समता स्थापित करने की।

अतः कीर्तन का ऊँचा लक्ष्य सामने रखना चाहिए, आरम्भ से ही।

21
आरती*

आरती में उस महाशक्ति का अद्‌भुत खेल होता है। वही अनेक रूप हो आरती की ज्योतियों में धारा रूप में प्रवाहित होती है। हिलती हुई आरती की ज्योतियों पर मानों शक्ति की बाढ़ आ जाती है। उसमें आरती में भाग लेने वाले मनुष्य ही नहीं कई देवसत्ताएँ भी भागीदार हो जाती हैं एक अपूर्व उत्सव हो जाता है उस महाशक्ति का।

वह ज्योतियाँ जिनके हिलने से आरती होती है वह शक्ति के प्रसार के प्रबल केन्द्र बन जाती हैं। हमारे हाथ की हथेलियाँ शक्ति के ग्रहण करने में सब अंगों से अधिक योग्य होती हैं, अपनी सम्वेदनशीलता के कारण। अत: उनके द्वारा उस शक्ति को ग्रहण कर अपने सिर को स्पर्श किया जाता है, उस शक्ति को सिर में संचरित करने के लिए और आदर दिखाने के लिए। ठीक तरीका है हाथ की उंगलियों का पल भर के लिए ज्योतियों के ऊपर रखना, फिर हटा करके उनसे अपने सिर को स्पर्श कर लेना। इससे वह प्रभाव हमारे सिर में संचरित हो जाता है। यह काम धैर्य से और गम्भीरता से करना चाहिए। और अंगों को भी इस प्रकार से स्पर्श किया जा सकता है।

हम जाप के लिए जगाई ज्योति में उस परम सत्ता को स्थापित कर उसकी आरती करते हैं, जिस प्रकार से मूर्ति में प्राण प्रतिष्ठा करके देवता की आरती की जाती है।

ढीले होकर ही आरती अच्छी तरह से की जा सकती है। आरती के समय सबको खड़ा रहने का नियम है। आरती दाँई ओर से बाँई

*इस पुस्तक के लिए पूज्य स्वामी जी द्वारा विशेष रूप से लिखा गया एक विषय।

ओर को, जैसे घड़ी की सुइयाँ (Clockwise) घूमती हैं, घुमानी चाहिए।

अखण्ड जाप की पूर्ति पर आरती करनी ही चाहिए। अखण्ड जाप में इतना प्रबल आवाहन होता है, शक्ति का इतना प्रसार होता है कि बिना आरती के उस कर्म की पूर्ति समुचित नहीं।

जितना जाप में आवाहन का महत्व है उससे भी अधिक आरती का है। आरती जाप की समाप्ति तथा महाशक्ति का विसर्जन है। आरती के समय देव शक्ति के साथ-साथ अन्य शक्तियाँ भी उपस्थित हो जाती हैं जो आरती के शान्त होने पर विदा हो जाती हैं।

22
प्रसाद*

भगवान की मूर्ति के समक्ष भोगार्थ जो कुछ भी उपस्थित किया जाता है, उसे नैवेद्य कहते हैं। नैवेद्य का अर्थ है जो निवेदन किया जाए। जो निवेदित किया जाता है वह उस देव के प्रभाव से विशेष शक्ति वाला हो जाता है। देव की दृष्टि अर्थात् उसकी चेतना का उस खाद्य में होने वाला प्रवाह उसमें प्रवाह की विशेषता ले आता है। अतः वह देव का प्रसाद हो जाता है उसकी कृपा का सूचक बन जाता है।

नैवेद्य आरती से पूर्व ही उपस्थित कर देना चाहिए। इस भाव से कि भगवान ने उसका भोग लगाया है। पल भर के लिए शान्त रहकर वह निवेदन कर देना चाहिए। बिना निवेदन किए नैवेद्य नहीं होता। वह प्रसाद नहीं बनता।

प्रसाद की विशेषता है देवदृष्टि से होने वाला प्रभाव। अतः प्रसाद को केवलमात्र खाद्य न समझकर देवकृपा का वाहक समझना चाहिए। उसे आदर देना चाहिए। जितनी ऊँची हमारी भावना होती है, उतना प्रसाद से हमें लाभ होता है। प्रसाद भगवान की ओर से हमें दी हुई, भोग लगाई हुई वस्तु है।

प्रभु चरणों में कृतज्ञता प्रकट करने के लिए भी भगवान को विशेष **रूप से नैवेद्य चढ़ाने की प्रथा चली आ रही है। किसी विशेष कार्य की सिद्धि के लिए भी किसी देवता के लिए प्रसाद चढ़ाना बोला जाता है।** भगवान को भोग लगाने से पूर्व यह खाद्यान्न 'अमनिया' कहलाता है और भोग लग जाने के बाद 'प्रसाद' बन जाता है।

---

*इस पुस्तक के लिए पूज्य स्वामी जी द्वारा लिखा गया एक और विषय।

हमें तो पाठ पढ़ना है सभी घटनाओं को समान रूप से भगवान से ही स्वीकार करने का। विवाह और मृत्यु, स्वास्थ्य और रोग सभी उसी की ही देन है। हानि और लाभ भी उसी के प्रसाद हैं।

जो निवेदन किया जाए वह सात्विक हो, शुद्ध हो और बाद में प्रसाद उपस्थित जनों में वितरण कर देना चाहिए तथा जहाँ भेजना हो, भेज देना चाहिए।

23
कुछ अनुभूतियाँ

साधकों को यह जान लेना चाहिए कि सब साधकों की अनुभूतियों का बिल्कुल एक जैसी होना सम्भव नहीं, इसलिए साधकों को दूसरों की अनुभूतियों में निज अनुभूतियों का साम्य देखने का यत्न नहीं करना चाहिए। दूसरों की अनुभूतियाँ उनकी अपनी निजी अनुभूतियाँ होगी। सभी प्रकार की अनुभूतियाँ सभी को नहीं होती हैं। यह अभाव किसी कमी का सूचक नहीं। अत: किसी विशेष प्रकार की अनुभूतियों के लिए इच्छा करनी महाशक्ति के स्वच्छन्द कार्य में बाधा उपस्थित करना है। जो अनुभव साधक के लिए उचित होंगे वह बिना इच्छा किए हुए ही प्राप्त होने लगेंगे।

हमारी उपासना में इन अनुभूतियों को तीन भागों में विभक्त किया गया है।*

1. चेतना सम्बन्धी अनुभूतियाँ
2. शक्ति सम्बन्धी अनुभूतियाँ
3. अन्य अनुभूतियाँ

1. चेतना सम्बन्धी अनुभूतियाँ

शान्ति का अवतरण तथा प्रसरण, आनन्द का अवतरण, तथा ज्ञान की अलौकिक झलकें, जो नए रहस्यों को पल भर में खोल दें, परमसत्ता

---

*इन अनुभूतियों के अर्थ तथा इस विषय पर और अधिक विस्तृत जानकारी के लिए कृपया पूज्य स्वामी जी कृत 'आध्यात्मिक साधन-भाग-1; के पृष्ठ 138-148 देखें

की प्रतीति, मन, बुद्धि इत्यादि से ऊपर स्थिर साक्षी रूप ये महत्वशाली प्रतीतियाँ हैं। ये प्रतीतियाँ अलग-अलग भी हो सकती हैं और एकदम से भी। यह साधन पथ की अनिवार्य अनुभूतियाँ हैं यह सभी साधकों को होती हैं और होनी चाहिएँ। चैतन्य के विकास की यह सुनिश्चित परिचायिका हैं।

2. शक्ति प्रधान अनुभूतियाँ

गति, बिजली, प्रकाश तथा शब्द ही इस क्षेत्र के मौलिक अनुभव हैं।

गति - साधन में बैठने पर चीटियों का सा रेंगना प्रतीत होने लगना, नसों का फड़कना, शरीर का हल्का हो जाना और ऐसा प्रतीत होना कि आसन भूमि से उठ गया हो, अथवा इसके विपरीत सिर पर अथवा सारे शरीर पर बोझा सा मालूम पड़ना और शरीर का अत्यधिक शिथिल हो जाना, शरीर के किसी अंग का, विशेष कर गर्दन का घूम जाना अथवा शरीर का घूमना, कभी-कभी झटके लगना, शरीर में कम्पन होना - यह इस श्रेणी की प्रधान अनुभूतियाँ हैं।

बिजली - बिजली की धाराएँ सिर में, अथवा शरीर के अन्य अंगों में दौड़ती हुई प्रतीत होने लगना। कभी-कभी सारा शरीर ही विद्युन्मय प्रतीत होता है और चारों ओर विद्युत ही विद्युत प्रतीत होती है।

प्रकाश - प्रकाश की अनुभूतियाँ बहुत विभिन्न होती हैं। कभी बिजली की तरह जैसे काली घटाओं में बिजली चमकती है, कभी निर्मल शान्त चाँदनी की छिटक, कभी अनेक सूर्यों से उत्पन्न हुआ तीव्र प्रकाश, कभी मन्द-मन्द सा उजाला, और कभी विविध रंगमय प्रकाशों के दर्शन। विभिन्न स्तरों में उसकी गति के कारण प्रकाश भी भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। कभी साधक उनको प्रतीत करता है और कभी नहीं करता।

शब्द – सूक्ष्म शब्द को अनाहद कहते हैं अनाहद का अर्थ है बिना आघात (परस्पर टक्कर) के पैदा हुआ। विभिन्न स्तरों में शक्ति की गति के कारण उत्पन्न हुए स्पन्दनों से, विचित्र गतियों से, विचित्र शब्द पैदा होते हैं: जितने सूक्ष्म स्तर में क्रिया होगी उतना सूक्ष्म शब्द भी होगा।

शक्ति की अनुभूतियाँ गौण अनुभूतियाँ हैं और अनिवार्य नहीं। इस में से किसी को बहुत प्रकार की अनुभूतियाँ होती हैं किसी को एक–आध प्रकार की और किसी को एक भी नहीं। इन अनुभूतियों का न होना किसी कमी का सूचक नहीं है।

3. अन्य प्रतीतियाँ

कम्पन – आरोह पथ की उपासना वालों के लिए यह मुख्य अनुभूति है। कम्पन प्रतीत होने पर पथ–प्रदर्शक को एकदम सूचित करना आवश्यक है।

रोमांच तथा अश्रुपात – शक्ति के हृदय चक्र में विशेष गति होने पर यह होने लगता है अवस्था आने पर यह स्वयं बन्द हो जाता है।

सूक्ष्म दर्शन – साधक प्राय: आँखें मूँदे हुए पर्वत, वन, नदी, जंगल इत्यादि के दृश्य देखने लगता है। कभी आकाश–मण्डल तारा, चन्द्र, सूर्य सहित दिखाई पड़ता है। यह सभी सूक्ष्म लोक के दृश्य हैं।

सिद्ध दर्शन – कभी कभी साधक, प्राय: साधन की प्राथमिक अवस्था में, जटाजूट वाले सिद्धों के दर्शन करने लगता है। घबराने की आवश्यकता नहीं। इस ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता नहीं। वे स्वयं हट जाते हैं।

भ्रमणादि – कभी साधक को ऐसा प्रतीत होता है कि वह किसी अन्य स्थल में, किसी अत्युच्च लोक में पहुँच गया है। इस ओर ध्यान

न देना ही उचित है। जितना इस ओर ध्यान न दिया जाएगा, उतनी ही विकास की प्रगति तीव्र होगी तथा शक्ति और समय का अपव्यय न होगा।

अपनी ओर से किसी भी अनुभूति की चाह नहीं करनी चाहिए। माँ महाशक्ति जब उपयुक्त समझेगी और जो अनुभूति उपयुक्त समझेगी वह स्वेच्छा से उचित समय पर प्रदान करेगी।

24
साधना की कसौटी

जो साधक आध्यात्मिक साधन पथ पर अग्रसर हो रहा है उसे आन्तरिक सन्तोष होता है। उसके भीतर से अन्तरात्मा कहता है – ''मैं अच्छा हो रहा हूँ, मैं आगे से अच्छा हूँ, सबल हूँ, शान्त हूँ, सचेत हूँ तथा आनन्दमय हूँ''।

आध्यात्मिक साधन (आत्मा से सम्बन्धित) के क्षेत्र में साधनोन्नति के अनिवार्य अनुभव हैं स्थिरता, शान्ति, तथा आन्तरिक समता की प्रतीति। यह साधक में महाशक्ति के अवतरण से आरम्भ होते हैं और साधना की प्रगति के साथ-साथ विस्तृत होते चले जाते हैं। इसके साथ ही साथ एक सूक्ष्म आनन्द भी प्रतीत होता है और वह फैलता चला जाता है। व्यक्ति भीतर सचेत हो जाता है। इन सभी की उत्तरोत्तर वृद्धि साधनोन्नति का अचूक लक्षण है।

इसके साथ ही साथ मन्त्र जाप के द्वारा प्राप्त होने वाली अवस्था भी किसी सीमा तक आन्तरिक प्रगति का परिचय दे सकती है, परन्तु इसको विशेष समझ वाला ही जान सकता है।

आन्तरिक साधना (मन-बुद्धि से सम्बन्धित) के क्षेत्र में बुद्धि तथा हृदय की अवस्था ही साधनोन्नति का परिचय देगी। उत्तरोत्तर बढ़ती हुई गम्भीर, तीव्र तथा स्थिर अभीप्सा, उत्तरोत्तर वर्धनशील ग्रहणशीलता तथा समर्पण का भाव, अध्यात्म विकास के अचूक लक्षण हैं। इसके साथ ही साथ मन की शुद्धि की अवस्था भी इस बात का परिचय देती है। अहंकार, मद तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह की कमी, वेग में अथवा वैसे महाशक्ति द्वारा होने वाले परिशोधन को बतलाते हैं। परन्तु इस विषय में साधक को जाँच करते समय उभाड़ों के बारे में

खबरदार रहना होगा। अन्यथा धोखा होने की सम्भावना है।

बाह्य साधना (व्यवहार से सम्बन्धित) के क्षेत्र में साधक को उस साधना के आदर्शों सत्य, प्रेम तथा सेवा के मापदण्ड से अपने को मापना होगा। जितना अधिक उसका व्यवहार इन आदर्शों से प्राणित होता जा रहा है, उतना ही वह साधक साधन-पथ में अग्रसर हो रहा है।

शारीरिक क्षेत्र में जीवनी शक्ति का अभ्युदय, शरीर का शोधन तथा प्राण का सामंजस्य उसकी साधना के अग्रगति के परिचायक लक्षण हैं।

अपनी स्थिति आँकते समय इस बात से सावधान रहना चाहिए कि दूसरे साधकों से ठीक-ठीक तुलना होनी बड़ी कठिन है। वास्तव में प्रत्येक साधक में उसकी आन्तरिक विशेषताएँ तथा विशेष माँगें हैं जिनके कारण क्रिया में और उसके कारण होने वाले विकास में बहुविध अन्तर हो जाता है। किसी में किसी क्षेत्र में अधिक प्रगति होती है और किसी में दूसरे क्षेत्र में।

* * *

साधना में आगे बढ़कर भोजन में परिवर्तन स्वाभाविक हो जाता है। व्यक्ति की रुचियाँ बदलने लगती हैं। इन भीतर से होने वाली प्रेरणाओं का अवलम्बन लेकर अपने भोजनादि में परिवर्तन करते चले जाना आवश्यक है। वह जिव्हा की माँगें नहीं होतीं, शरीर तथा शरीर के आधारभूत प्राण की माँग होती है। उसे पूरा करना चाहिए। किसी जिद्द से, अथवा आदत के बहाने उसे ठुकराना साधन के लिए कदापि हितकर नहीं होता।

साधना के आगे बढ़ने पर निद्रा भी स्वयं कम होने लगती है। थोड़े से समय में ही क्रियाशील महाशक्ति के विलास के कारण थकावट दूर हो जाया करती है। यहाँ तक अनुभव में आता है कि खूब थके होने पर यदि अपने को शिथिल कर थोड़े समय के लिए राम स्मरण किया जाय तो सारी थकावट एकदम दूर हो जाती है और एक नए

जीवन का संचार होने लगता है। किन्तु नींद को जानबूझकर कम करने की कोशिश न करनी चाहिए। वास्तव में जितनी तीव्रता से साधन चलेगा उतने अधिक आराम की आवश्यकता होगी। यदि नींद पूरी न होगी तो एकाग्रता होना भी प्रायः असम्भव है।

* * *

साधना में उन्नति का मापदण्ड है हमारे भीतर की बढ़ती हुई समता। समता कहते हैं सुख-दुख और मानापमानीय जोड़ों से प्रभाव रहित रह सकने और रहने की मात्रा को। यदि बातें और घटनाएँ हमें उतना प्रभावित नहीं करती जितना पहले करती थीं तो समझना चाहिए कि हम आगे बढ़ रहे हैं। प्रभु में बढ़ता हुआ विश्वास और निर्भरता भी इसी बात की सूचक हैं।

* * *

साधना का क्रम जो भीतर चलना चाहिए, जिस प्रकार संस्कारों का क्षय होता जाना चाहिए, जैसे संस्कारों के उतार चढ़ाव आने चाहिएँ, विश्वास और निर्भरता बढ़ती जानी चाहिए, यदि सभी कुछ हो रहा है तो हम आगे बढ़ रहे हैं। बढ़ती हुई भीतर की स्थिरता, कम होते हुए उद्वेग और इनसे भी बढ़कर बदलता हुआ जीवन के प्रति दृष्टिकोण, हमारी साधना की कसौटी है।

* * *

ध्यान में जो होता है उससे साधक को स्वयं यह जानना है कि वह आगे बढ़ रहा है कि नहीं - कठिन है। जानने वाला ही बता सकता है।

* * *

यदि भीतर उसका (प्रभु का) हो जाने के लिए तड़फ होने लगी है, यदि जीवन का वह एकमात्र कर्णधार और लक्ष्य दीखने लगा है तो समझो कि आप प्रभु की ओर जा रहे हैं। धीरे-धीरे बड़ी बातें भी हो जाएँगी। बहुत बड़े पैमाने से अपने को मापने का परिणाम ठीक नहीं होता।

25
सम्मिलित उपासना के बारे में कुछ अन्य बातें

सम्मिलित उपासना अकेले की गई उपासना की अपेक्षा कहीं अधिक लाभदायक है। इसमें आवाहन सामूहिक होने से और नाम की तरंग के कई गुना प्रबल हो जाने से महाशक्ति का प्रवाह कई गुणा हो जाता है। वह प्रभाव सम्मिलित ध्यान में भाग लेने वाले सभी साधकों में स्थापित होने लगता है। अत: सम्मिलित उपासना को थोड़ा समय भी अकेले की गई बहुत समय की उपासना से अधिक लाभकारी होता है। वातावरण को शुद्व करने का यह एक प्रबल साधन है।

इस उपासना की सफलता कई बातों पर निर्भर करती है। भाग लेने वाले साधकों की लगन के अतिरिक्त यह बहुत महत्वपूर्ण बात है कि वे अपने को कितना शान्त तथा तन्मय रख सकते हैं।

इसको सफल अर्थात् सभी साधकों के लिए अधिकाधिक लाभदायक बनाने के लिए कुछ नियमों का पालन आवश्यक है। वे नीचे दिए जाते हैं।

1. समय का पूरी तरह पालन बड़ी प्रभाव रखने वाली बात है। देरी से आना सब से बड़ी चूक है। इससे हम दूसरों के लिए बहुत विक्षेप का कारण होते हैं। अत: समय से 5-7 मिनट पूर्व ही आ जाना चाहिए जिससे शान्तिपूर्वक हाथ-पैर धोकर बैठा जा सके। सभी लोगों को तो इस काम के लिए समय की आवश्यकता होती है।

2. आने-जाने में होशियारी से काम लेना चाहिए। चलने की धमधम धीमी से धीमी भी न होनी चाहिए। दरवाजों को छूना हल्के से होना चाहिए। कभी-कभी इनसे उत्पन्न आवाज बड़ा विघ्न डालती हैं। पाँव जमीन पर न घिसने चाहिएँ।

3. हाथ-पाँव धोकर ही उपासना के कमरे में जाना चाहिए। ध्यान रहे कि ऐसा करने में कम से कम आवाज हो। यदि इस ओर थोड़ा भी ध्यान दिया जाएगा तो शब्द बहुत कम होगा। समय से पूर्व आकर यदि यह कार्य कर लिया जाए तो किसी प्रकार की बाधा न होगी।

4. बैठने में देरी से आने वाले साधकों को आगे बैठे हुए साधकों के पीछे ही बैठना चाहिए। अपना स्थान पाने के लिए आगे जाना उचित नहीं। समय पर आने वालों को अपने-अपने स्थान पर ही बैठना चाहिए। देरी से आने वालों को, दूसरों के हित को आगे रखना चाहिए और आगे के लिए समय के पालन की चेष्टा करनी चाहिए।

5. बैठते समय अपने आगे जगह खाली मत छोड़िए। परन्तु दूसरों को छुइएगा भी नहीं।

6. यदि मन क्षुब्ध हो अथवा हाँफ रहे हों तो शान्त होने तक उपासना में मत बैठिए।

7. हिलने-जुलने अथवा आसन बदलने में भी कोई आवाज न होनी चाहिए। यदि कपड़े बिना कलफ के रहेंगे तो आवाज कम होगी।

8. चूड़ियों व आभूषणों की आवाज भी न होनी चाहिए। यदि ऐसा होने की सम्भावना हो तो एक धागे से चूड़ियों को बाँध लेना चाहिए। आवाज करने वाले दूसरे आभूषणों को तो अलग ही करना होगा।

9. जाप में बैठे यदि अकस्मात् खाँसी लगे तो धीरे से बाहर सरक

जाना चाहिए और दूर जा खाँस कर लौट आना चाहिए। लक्ष्य रहना चाहिए कम से कम गडबड़ का कारण होना।

10. यदि खाँसी का रोग हो तो द्वार के पास बैठ सकते हैं। खाँसी आए तो चुपके से बाहर सरक जाइए और इतनी दूर पर खाँस आइए कि बैठने वालों को बाधा न हो।

    हमारे खाने-पीने का खाँसी से बहुत गहरा सम्बन्ध रहता है। अपने खाने की मात्रा कम करने और भोजन को सादा और हल्का कर देने से लाभ होगा। किसी भी रुप में धूम्रपान खाँसी का कारण हो सकता है। समझदार साधकों को संयम करना ही उचित है।

11. अपनी-अपनी माला अपने साथ ले जानी चाहिए। माला ऐसी हो जो आवाज न करे, चाहे सुमरनी हो चाहे पूरी माला। जाप की पूर्ति पर माला रख दें। उससे खेल न करें।

12. पड़ौसी की माला से, उसकी श्वास क्रिया से अथवा उसके खर्राटों से आवाज हो रही हो तो उसे छूकर सचेत कर दीजिए। वह सभी साधकों के प्रति एक सेवा होगी।

13. इस प्रकार सचेत किए जाने वाले साधक को कभी भी बुरा न मानना चाहिए। अपितु उसका कृतज्ञ होना चाहिए जिसने आपको सचेत कर दिया। ऐसे में साधक प्रायः स्वयं भी नहीं जानता कि वह सो रहा है या उसके द्वारा कोई आवाज हो रही है और बताए जाने पर हैरान होता है।

14. यदि बैठने में परेशानी हो तो ज्योति से दूर ही बैठना चाहिए। बहुत परेशानी होने पर, बार-बार आसन बदलने की आवश्यकता होने पर, उठकर दूर चले जाना चाहिए। यदि फिर भी चैन न हो तो अलग जाकर बैठ जाना चाहिए।

15. जाप के स्थान को बिल्कुल साफ रखना साधकों की अपनी जिम्मेदारी है। उसे साफ रखने में जो भी सेवा बन पड़े वह साधकों

को अपना अहोभाग्य समझना चाहिए। वह सेवा प्रभु की सेवा है, सभी साधक बन्धुओं की सेवा है।

16. जाप आरम्भ होते ही द्वार और बिजली बन्द कर देने चाहिएँ।

17. सम्मिलित उपासना में ज्योति जलाकर ही बैठना चाहिए।

18. इसमें केवल राम-नाम का जाप-स्मरण होता है। अधिकाधिक लाभ उठाने के लिए, प्रवाहित राम नाम की तरंग को और भी प्रबल करने के लिए सभी साधकों को यही करना चाहिए। इसी में सबको अधिक लाभ होगा। भिन्न-भिन्न नामों के जाप से वातावरण की विशुद्धता और प्रबलता रह सकनी कठिन हो जाती है।

19. नए प्रवेश करने वाले साधकों को हमारी उपासना के बारे में तथा कैम्प के नियमों की पूरी जानकारी प्राप्त करके ही सम्मिलित होना चाहिए। जो साधक किसी नए व्यक्ति को सम्मिलित होने के लिए प्रोत्साहित करता है उसकी यह जिम्मेदारी होती है कि वह उसे इस विषय की सभी बातें भली-भाँति बता दे।

20. सामूहिक उपासना में भाग लेने वालों को यह न भूलना चाहिए कि ध्यान की सन्तुलित, शान्त अवस्था में सूईं के गिरने की आवाज भी खटकती है। अत: किसी साधक को, किसी भी प्रकार की आवाज का कारण न होना चाहिए। दूसरों के हित-अहित को, शान्ति तथा विक्षेप को ध्यान रखकर व्यवहार करना चाहिए। भागवत-पथ की यह माँग है।

21. जाप-ध्यान मात्र से ही उपासना की पूर्ति नहीं हो जाती। साधक को अपना सारा जीवन ही सेवा-साधनामय बना देना है। उसके लिए बहुत कुछ समझने की और अपने में परविर्तन करने की आवश्यकता है।

22. यह साधना परिवार है। यहाँ कोई छोटा अथवा बड़ा नहीं है।

सामाजिक अथवा आर्थिक स्थिति के वैषम्य होने पर भी सभी साधक गुरु-बहिन भाई बराबर हैं और स्नेह तथा प्रेम भाव की डोरी से परस्पर बँधे हुए हैं।

26
प्रार्थना के लिए कुछ भाव

प्रभो ! मुझे अपना सच्चा सेवक बना ले, मुझे अपना सच्चा पुत्र बना ले और अपना पूर्ण यन्त्र बना ले। मुझे पूरी तरह से अपना कर लें और अपने से एक कर ले पूरी तरह से।

* * *

परमप्रभो ! परमेश्वर ! हम तुम्हारी शरण में हैं। अपनी कृपामयी महाशक्ति को हम पर प्रेरित करो। हमारी बुद्धि, हमारा हृदय, हमारा प्राण और हमारी इन्द्रियाँ, सभी शुद्ध हों, सबल और दिव्य हों। हम भीतर तथा बाहर से जग उठें। तेरी शक्ति का हममें प्रवेश हो।

* * *

प्रभो ! परमात्मा ! सर्व शक्तिमते। हम में सच्ची श्रद्धा को जागृत करो। हममें सच्ची भक्ति हो, सेवा की भावना हो। हम पूरी तरह से तेरे समर्पित हो जाएँ। तेरी इच्छा ही हमारी इच्छा हो।

* * *

प्रियतम देव ! मेरे प्राणों के प्राण ! आ और मुझ में समा जा। आ और मुझे पूरी तरह से अपना कर ले। मैं तेरा हो जाऊँ और तू मेरा हो जाए। मैं तुझ में निवास करूँ, पूर्णरूपेण और तू मुझ में।

* * *

हे देवाधिदेव !

'असतो मा सद्गमय' - असत् से मुझे सत् की ओर ले चलो।

'तमसो मा ज्योतिर्गमय' – अन्धकार से मुझे प्रकाश की ओर ले चलो।

'मृत्योर्मा अमृतं गमय' – मृत्यु से मुझे अमृतत्व की ओर ले चलो।

* * *

तेरी चेतना मुझमें प्रतिष्ठित हो। मैं अनवरत तेरे सामीप्य को अनुभव करूँ। तू ही मेरी ज्योति हो, तू ही मेरा अमृतत्व और तू ही मेरा सत् हो। बस मैं तुझे ही तुझे, केवल तुझ ही को चाहूँ।

* * *

हे यज्ञेश्वर् ! हे परमेश्वर ! हे मम जीवन धन ! मुझे यज्ञमय कर दो, मेरा जीना दूसरों के लिये हो, तेरे लिये हो।

* * *

हे प्रभु ! मुझ में सच्ची लगन लगा दो। मैं तेरे बिना चैन न पा सकूँ, और तेरे बिना जीना आकुलता हो।

* * *

तेरे हाथों में मैं यन्त्र बना सब के हित के लिये जीऊँ, तुझसे सदा युक्त हुआ तेरे लिये जीऊँ।

* * *

माँ ! महाशक्ते ! कृपा कर। आ, मुझे गोदी में ले ले, मुझे सम्भाल। तू ही मेरी साधना बन जा। तेरी प्रीति की तरंग मेरे भीतर सदा जागृत रहे। मैं सदैव तेरी गोदी में खेला करूँ।

* * *

माँ ! कृपाकर। मुझे अपना ले। अपना वरद हस्त मेरे सिर पर रख दे। फिर निहाल हो जाऊँगा मैं, माँ।

* * *

माँ ! महाशक्ते ! भर दे हमें अपने चरणों की प्रीति से। अपनी सच्ची श्रद्धा से। तेरा ही हो जाने की – पूरी तरह से समर्पित हो जाने की, प्रबल स्थिर भावना जग जाय हमारे भीतर। हम तेरे आगे माथा टेकना सीख जायें।

* * *

तू ही मेरा सत् है माँ माहेश्वरी ! और तू ही है मेरी एकमात्र ज्योति। तू ही मेरी अमरता है। माँ ! मैं चाहता हूँ केवल तुझे–तुझे ही, वह भी तेरा ही हो जाने के लिए।

* * *

माँ ! यह जीवन तेरे लिए हो, और इस तरह सभी के लिये। मिटा दे इस अहम् को मैया। और मुझे अपना करले पूरी तरह से।

* * *

भगवान ! हे भगवान ! मैं जानता हूँ कि मेरे भीतर विकार हैं। तूने ही किया है, जो किया है और तू ही करेगा जो कुछ और होने को है। मैं क्या चाहता हूँ, यह भी तो मैं नहीं जानता। जो देने को है सो तू देगा ही। तेरी कृपा है। यह मैं जानता हूँ। यह मस्तक, यह हृदय, यह कण–कण तेरे चरणों में कोटिशः नत है।

* * *

तेरा वरद हस्त मेरे सिर पर है माँ। और उसी से यह जीवन मंगलमय है। तेरी ही गोदी में तो खेला करता हूँ रात दिन। और तू ही भीतर बैठी लीला करती है।

* * *

माँ ! महाशक्ते ! तू अपार है। मंगलमयी, सौम्यस्वरूपिणी माँ।

27
आत्म निवेदन के पद

जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे। जय गुरु देव दयानिधि प्यारे।
राम प्राणप्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के।
जननि जनक गुरु बंधु हमारे। कृपानिधान प्रान ते प्यारे।।
प्रभु पितु मातु सुहृद गुरु स्वामी। पूज्य परम हितु अंतरजामी।।
मोरें तुम प्रभु गुरु पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता।।
मोरे सबहि एक तुम स्वामी। दीनबंधु उर अंतरयामी।
सुत पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू।।
मैं अबोध बालक बल हीना। राखहु सरन नाथ जन दीना।।
बालक ग्यान बुद्धि बल हीना। राखहु सरन जानि जन दीना।।
समरथ सरनागत हितकारी। गुनगाहकु अवगुन अघहारी।।
कोमल चित अति दीनदयाला। कारन बिनु रघुनाथ कृपाला।।
असरन सरन बिरदु संभारी। मोहि जनि तजहु भगत हितकारी।।
दीन दयालु बिरदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी।।
संतत मो पर कृपा करेहु। सेवक जानि तजेउ जनि नेहू।।
जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुना सागर कीजिअ सोई।।
जेहि विधि नाथ होइ हित मोरा। करहु सो बेगि दास मैं तोरा।।
जेहि विधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुना सागर कीजिअ सोई।।
अब कछु नाथ न चाहिअ मोरे। दीनदयाल अनुग्रह तोरें।।

तुम्हहि नीक लागै रघुराई। सो मोहि देहु दास सुखदाई।।
जाते प्रभु चित्त छोभ न होई। करुणा सागर कीजिय सोई।।
मंगल भवन अ मंगलहारी। द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी।।
जो कोसल पति राजिव नयना। करउ सो राम हृदय मम अयना।।
जौं अनाथ हित हम पर नेहू। तौ प्रसन्न होइ यह बर देहू।।
अबिरल भगति बिरति सतसंगा। चरन सरोरुह प्रीति अभंगा।।
अनुज जानकी सहित निरंतर। बसहु राम नृप मम उर अंतर।।
देउ भगति रघुपति अति पावनि। त्रिबिध ताप भव रोग नसावनि।।
यह बर मागऊँ कृपा निकेता। बसहु हृदय श्री अनुज समेता।।
यह बर मांगउ कर जोरे। मनु परिहरइ चरन जनि भोरे।।
कृपा बारिधर राम खरारी। पाहि पाहि प्रनतारति हारी।।
सेवत सुलभ सकल सुख दायक। प्रनतपाल सचराचर नायक।।
राजिवनयन धरे धनु सायक। भगत बिपति भंजन सुख दायक।।
आसुतोष तुम्ह अवढर दानी। आरति हरहु दीन जनु जानी।।
बिश्वनाथ मम नाथ पुरारी। त्रिभुवन महिमा बिदित तुम्हारी।।
गुरु पितु मातु महेस भवानी। प्रनवउँ दीनबंधु दिन दानी।।
तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा।।
सहित अनुज मोहि राम गोसाईं। मिलिहहिं निज सेवक की नाई।।
मोरे जियँ भरोस दृढ़ नाहीं। भगति बिरति न ग्यान मन माहीं।।
नहिं सत्संग जोग जप जागा। नहिं दृढ़ चरन कमल अनुरागा।।
मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा। सब तजि करैं चरन रज सेवा।।
जोरि पानि बर माँगउँ एहू। सीय राम पद सहज सनेहू।।
सीता राम चरन रति मोरें। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरे।।

राम सुस्वामि कुसेवक मोसों। निज दिसि देखि दयानिधि पोसो।।
कहत नसाइ होइ हियँ नीकी। रीझत राम जानि जन जी की।।
रहति न प्रभु चित चूक किये की। करत सुरति सय बार हिए की।।
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ।।
मोरि सुधारिहि सो सब भाँती। जासु कृपा नहिं कृपाँ अघाती।।
हा रघुनंदन प्रान पिरीते। तुम्ह बिनु जिअत बहुत दिन बीते।।
अब प्रभु कृपा करहु यहि भाँती। सब तजि भजन करहुँ दिन राती।।
नाथ तुम्हार रुप गुण नामा। बसहिं निरंतर मम उर धामा।।
अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे।।
सेवक हम स्वामी सियनाहू। होउ नात यह ओर निबाहू।।

अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर मागऊँ।
जेहिं जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ।।

मोहिं न चाहिअ नाथ कछु मउ तुम सन सहज सनेहु।
दीनबंधु करुनायतन यह मोहिं माँगे देहु।।

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन।।

मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुवंस मनि हरहु बिषम भव भीर।।

बार बार बर मागउँ हरषि देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग।।

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम।।

नाथ एक बर मागउँ राम कृपा करि देहु।
जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु।।

श्रवन सुजसु सुनि आयउँ प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुबीर॥

परमानंद कृपायतन मनि परिपूरन काम।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम॥

अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम।
मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निहकाम॥

सीता अनुज सेमत प्रभु नील जलद तनु स्याम।
मम हिय बसहु निरंतर सगुनरूप श्रीराम॥

स्वामी मोहि न बिसारियो लाख लोग मिलि जाहिं।
हम से तुम को बहुत हैं तुम से हमको नाहिं॥

मै अपराधी जनम का नख सिख भरा विकार।
तुम दाता दुख भंजना मेरी करो सम्हार॥

का मुख लै विनती करूँ लाज आवति है मोहि।
तुम देखत अवगुन करऊँ कैसे भाऊँ तोहिं॥

अवगुन किये तो बहु किये करत न मानी हार।
भावैं बंदा बख़शिये भावैं गरदन मार॥

अवगुन मेरे बाप जी छमहु गरीब निवाज।
जो मैं पूत कपूत हूँ तऊ पिता को लाज॥

नहिं बिद्या नहिं बाहु बल नहिं खरचन को दाम।
मोसे पतित अपंग की तुम पति राखहु राम॥

एक सहारा एक बल आतम एक अधार।
जो नहिं पकड़हु बाँह तो कौन लगायै पार॥

बड़ा भरोसा बड़ा बल बड़ी आस बिश्वास।
बड़ा जान शरणै पड़ा एक तिहारी आस॥

सीतापति रघुनाथ जू तुम लगि मेरी दौर।
जैसे काग जहाज को सूझत और न ठौर॥

रोम रोम में तू रमे मेरे मोहन राम।
अमृत मय शिवरूप तू है मुदमंगल धाम॥

मेरा मुझमें कुछ नहीं जो कुछ है सब तोर।
तेरा तुझको सौंपते का लागत है मोर॥

गुरु पितु माता स्वामि तुम जाऊँ कहाँ तजि तोहिं।
अबलौं भटक्यों बहुत प्रभु शरण लेहु अब मोहिं॥

भलाु बुरो जैसो कुछू मैं तेरो सुत माय।
निज जन जानि सम्हारियो सब अपराध भुलाय॥

हम आये तुम्हरी सरन मन में आस लगाय।
भगति तिहारि मिलहिगी जनम सफल ह्वै जाय॥

भक्ति दान मोहिं दीजिये गुरु देवन के देव।
और नहीं कछु चाहिये निसि दिन तेरी सेव॥

अविरल भगति विसुद्ध तब श्रुति पुरान जो गाव।
जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव॥

भगत कल्पतरू प्रनतहित कृपासिंधु सुखधाम।
सोई निज भगति मोहिं प्रभु देहु दया करि राम॥

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥
बंदउँ पद सरोज सब केरे। जे बिनु काम राम के चेरे॥
बंदउँ नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥
सुजन समाज सकल गुन खानी। करउँ प्रनाम सप्रेम सुबानी॥
बंदउँ बालरूप सोइ रामू। सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू॥

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर॥

28
पूजन सामग्री

स्वामी जी का चित्र
ज्योति पात्र के लिए स्टूल
स्टूल कवर
थाली
कटोरी अथवा ज्योति पात्र
रुई
शुद्ध घी
चम्मच
अगरबत्ती
अगरबत्ती स्टैण्ड
चौकी
बाल्टी
आरती के लिए थाली
आरती के लिए 5 ज्योति पात्र
घण्टी
तौलिया मुँह-हाथ पौंछने को
तौलिया पावँ पौंछने को
पानी
लोटा
ज्योति ढकने के लिए चिमनी
दियासलाई
पुष्प और पुष्पहार

29
अपने लिए सामग्री

आसन

माला

गीता

ओढ़ने की चादर

रुमाल या अंगोछा

नोट बुक, पेंसिल या बॉल पेन

चश्मा (यदि लगाते हों)